

तापोभूमि

मासिक



महर्षि दयानन्द सरस्वती

विष को पीकर अमृत बाँटा। तेरा ऋणी रहे संसार॥

(निर्वाण दिवस दीपावली)

हम प्रायः संसार में देखते हैं कि बड़े-बड़े धनवान, बुद्धिमान, बलवान विद्वान भी अपने जीवन में घोर संकटों से घिरकर सर्वनाश को प्राप्त हो जाते हैं। इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पड़ा है। रावण, कंस, दुर्योधन जैसे प्राचीनकाल में हुये लोग सब कुछ सांसारिक वैभव प्राप्त करके भी सर्वनाश को प्राप्त हुये। वर्तमान में भी सद्दाम हुसैन जैसे राष्ट्राध्यक्ष कुत्ते की मौत मारे गये। इन सब बातों पर विचार करके यही निश्चय होता है कि वह कौन-सा तत्त्व है जो इनके पास नहीं था जिसके बल पर ये लोग स्वयं को और अपने साम्राज्य को सुरक्षित रख लेते। शास्त्रों को पढ़कर देखा है और विद्वानों ने, मनीषियों ने भी बताया है कि वह तत्त्व विवेक है। विवेक शून्य व्यक्ति सब कुछ होते हुये भी नष्ट हो जाता है। और विवेकशील व्यक्ति भौतिक ऐश्वर्य से हीन होते हुये भी अपने साथ लाखों मनुष्यों का भी भला कर जाता है। भगवान श्रीराम, योगीराज श्रीकृष्ण, गौतम, कपिल, कणाद, व्यास, जैमिनी, महर्षि दयानन्द जैसे व्यक्तियों ने विवेक सम्पन्न होने के कारण जीवन में आयी विनाश की हर घड़ी को अपने विवेक के द्वारा कल्याणमय बना दिया। महाकवि शंकर ने विवेक के बारे में बड़ा ही सुन्दर लिखा है। वे लिखते हैं कि-

दुःख के कारण बहुत हैं, सुख के हेतु अनेक।
कारण है कैवल्य का, केवल एक विवेक॥

अब प्रश्न उठता है कि विवेक है क्या? इसे किस प्रकार परिभाषित किया जाये। महर्षि मनु ने मनुस्मृति में लिखा है कि-

अदिर्भागात्राणि शुद्ध्यन्ति, मनः सत्येन शुद्ध्यति।
विद्या तपोभ्याम् भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति॥

अर्थात् शरीर की शुद्धि जल से होती है, मन शुद्ध सत्य से होता है, विद्या और तप से आत्मा में पवित्रता आती है और बुद्धि की शुद्धि ज्ञान से होती है।

इससे ज्ञात होता है कि विवेक का सीधा सम्बन्ध मन के साथ है, जिस प्रकार सूर्य बादलों के पीछे छिप जाने पर अन्धकार छा जाता है और हमें संसार की वस्तुओं का आंख के द्वारा यथार्थ बोध नहीं हो पाता है और जब बादल छट जाते हैं तब सूर्य की किरणों के मुक्त होने के कारण हमारी आंखें हर वस्तु को यथावत् देखने में समर्थ हो जाती हैं। इसी प्रकार जब व्यक्ति सत्य से विमुख हो जाता है तब उसके मन पर स्वार्थ की काली घटायें छा जाती हैं। बुद्धिरूपी आंखें होते हुए भी हमारे मन को ठीक प्रकाश नहीं मिल पाता है और जब मन के धरातल पर सत्य का सूर्य चमकने लगता है तब विवेकरूपी किरणों के प्रकाश में हमारी बुद्धि यथावत् प्रकाशित होने लगती है। और हमें हर परिस्थिति में यथावत् बोध होने लगता है। हम इस बोध के कारण अज्ञान अंधकार के गहरे गर्त को जानकर उसमें गिरने से बच जाते हैं तथा सर्वनाश की दुखद घड़ी उपस्थित नहीं होती है। इससे स्पष्ट रूप से यह बात ज्ञात हुई कि विवेकशील बनने के लिये हमें अपने मन को सत्य से पवित्र कर प्रकाशित करना पड़ेगा। तभी विवेक का उदय होगा और हमारा भौतिक और आध्यात्मिक जीवन आनन्द से परिपूर्ण हो जायेगा। इसके विपरीत जब हम परोपकार से विमुख होकर स्वार्थरूपी गहन अन्धकार की ओर कदम बढ़ा देते हैं तब विवेक शून्य होकर हम अपने सर्वनाश के द्वार खोल लेते हैं। राष्ट्रकवि दिनकर ने ठीक लिखा है कि-

जब स्वार्थ मनुज की आंखों पर, मांडी बनकर छा जाता है।
तब वो मानव से बड़े-बड़े, दुश्चिन्त्य कृत्य करवाता है॥

यह निश्चित है कि घोर स्वार्थी सर्वनाश के द्वार खोल लेता है क्योंकि विवेक स्वार्थ आते ही हट जाता है-

जब स्वार्थ मनुज पर छाता है।
उसका विवेक मर जाता है॥

ऐसा मनुष्य कभी भी अपनी वास्तविक स्थिति का आंकलन नहीं कर पाता है और सर्वनाश करने वाली परिस्थितियों को अपने आप आमंत्रित कर लेता है। फिर उसका हाल जाल में फंसी हुई उस मकड़ी के समान हो जाता है जिसने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए छोटे-छोटे जीवों को फंसाने के लिये जाल बनाया था। उस जाल में फंसाकर मक्खियों आदि को अपना शिकार

-(शेष पृष्ठ संख्या 35 पर)



ओ३म् वयं जयेम (ऋक्०)
शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका
(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष-62

संवत्सर 2073

अक्टूबर 2016

अंक 9

संस्थापक
स्व० आचार्य प्रेमभिक्षु

संपादक:
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

अक्टूबर 2016

सृष्टि संवत्
1960853117

दयानन्दाब्द: 193

प्रकाशक

सत्य प्रकाशन

आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग
मसानी चौराहा, मथुरा
(उ० प्र०)
पिन कोड-281003

दूरभाष:

0565-2406431

मोबा. 9759804182

अनुक्रमणिका

लेख-कविता

पृष्ठ संख्या

वेदवाणी	-डॉ० रामनाथ वेदालंकार	4
पुराणों को किसने बनाया ?	-डॉ० श्रीराम आर्य	5-8
काम-वासना	-बाबू सूरजभान वकील	9-12
ब्रह्मचर्य-विज्ञान	-जगननारायण देव	13-16
मनुष्य पंच किस प्रकार बन सकता है?	-पं० हनुमानप्रसाद शर्मा	17-18
प्रेम विचित्र वस्तु है	-स्वामी मुक्तानन्द परिव्राजक	19-20
उद्देश्य की एकता	-पं० माधवराव सप्रे	21-25
निराशाग्रस्त-निर्जीव और निरर्थक जीवन -		26-27
अपनी कमाई-सदा काम आई -		28-29
कार्लाइल की क्षमा शीलता -		29
स्वास्थ्य, सफलता और शक्ति प्राप्त	-बाबू दयाचन्द्र गोयलीय	30-33
करने का गुप्त रहस्य		
संतान-शिक्षक	-डॉ० गोकुलचन्द्र नारंग	34

वार्षिक शुल्क 150/-

पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 1500/- रुपये

वेदवाणी

लेखक: डॉ० रामनाथ वेदालङ्कार

हस्ताभिमर्श-चिकित्सा

हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी।

अनामयित्लुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वाभि मृशामसि॥ -अथर्व० 4.13.7

शब्दार्थः-

(दशशाखाभ्याम्) अंगुलिरूप दश शाखाओं वाले (हस्ताभ्याम्) दोनों हाथों के प्रयोग की अपेक्षा (जिह्वा) जीभ (वाचः पुरोगवी) वाणी को पहले प्रेरित करनेवाली हो। (अनामयित्लुभ्याम्) आरोग्यकारक (ताभ्यां हस्ताभ्याम्) उन दोनों हाथों से (त्वा अभि मृशामसि) तुझे हम स्पर्श करते हैं, सहलाते हैं।

भावार्थः-

अस्वस्थ रोगी को स्वस्थ करने के लिए देश-विदेश में कई चिकित्साएँ चली हुई हैं। उनमें एक हस्तभिमर्श चिकित्सा भी है। यह अकेली भी प्रयुक्त होती है और अन्य चिकित्साओं के साथ सम्मिलित करके भी। इसमें जादू-टोने की कोई बात नहीं है। कल्पना कीजिए रोगी के माथे में दर्द है। चिकित्सक पहले तो वाणी का प्रयोग करता है-देख, तेरा सिर-दर्द अभी रफूचक्कर हो जायेगा। मेरे हाथ में जादू है। यह देख, हाथों की दसों अंगुलियाँ दर्द को सिर से निकाल देने के लिए फरफरा रही हैं। अभी तेरा दर्द गायब हो जायेगा। पहले चिकित्सक दसों अंगुलियों को अलग-अलग रखे हुए दोनों हाथों से सिर को सहलाता है, फिर सब अंगुलियों को मिलाकर धीरे-धीरे सहलाता है। फिर हाथों को सिर से कुछ ऊपर रखकर यही क्रिया करता है। फिर हाथों को परस्पर रगड़कर यही क्रिया करता है। आवश्यकता होती है तो हाथों को पानी में भिगोकर यही क्रिया करता है। फिर हथेलियों को शान्ति से बिना हलचल के सिर पर फिराता है। रोगी के अनुसार हस्त-क्रियाएँ बदलती भी है। पैर में दर्द होता है तो हस्त क्रियाएँ भिन्न प्रकार से चलती है। दर्दों के लिए ही नहीं, अन्य रोगों के लिए भी हस्तभिमर्श चिकित्सा उपयोगी पायी गयी है। ज्वर आदि रोग भी इससे ठीक हो सकते हैं। कभी-कभी इस क्रिया से रोगों का उपचार अन्य दवाओं के साथ भी होता है। वाणी से रोगी को रोग दूर होने का विश्वास दिलाना इस चिकित्सा का विशिष्ट अंग है।

वैद्य मन्त्र में कह रहा है कि दश शाखाओं वाले हाथों के प्रयोग से पहले मेरी जिह्वा वाणी को पुरोगवी अर्थात् आगे जानेवाली कर रही है। तात्पर्य यह है कि हाथों के प्रयोग से पहले मैं वाणी से रोगी को सान्त्वना दे रहा हूँ। उत्तरार्ध में वैद्य कहता है कि अनामय (रोगराहित्य) करनेवाले हाथों से मैं तेरे रुग्ण अंग का अभिमर्शन अर्थात् स्पर्श, सहलाना, रगड़ना आदि कर रहा हूँ।

रोगी जन अपने शरीर पर रोगनिवारणार्थ हस्तक्रिया का प्रयोग कुशल वैद्य से करवाकर देखें। ❀

पुराणों को किसने बनाया?

लेखक: आचार्य डॉ० श्रीराम आर्य

इसी प्रकार की बहुत सी मार्के की बेतुकी मनोरंजक पुराणों की गल्पों को हमने पृथक् पुस्तक “पौराणिक गण्य दीपिका” के नाम से प्रकाशित किया है, जिसे इसी सम्बन्ध में देखना उचित होगा।

पुराणों में तीर्थों, व्रतों की कथाओं एवं उनके महात्म्यों की भरमार है। नाना प्रकार की गण्यें उनका महत्व दर्शाने एवं भक्तों को भ्रम में डालने के लिए गढ़-गढ़कर पुराणों में भर दी गयी हैं। मुक्ति के लिए भी एक से एक बढ़िया नुस्खे पुराणों में लिखे गये हैं।

किसी देवता के नाम स्मरण से, किसी भी तिथि को व्रत रखने आदि से नदियों में स्नान ही नहीं बल्कि उनका नाम ले लेने मात्र से, किसी भी देवता की मूर्ति के पूजन व दर्शन से, माथे पर त्रिपुण्ड्र, ऊर्ध्वपुण्ड्र आदि तिलक अर्थात् साइनबोर्ड लगाने से, शरीर पर केवल भस्म मात्र लगाने से, बेलपत्र आदि अथवा एक लोटा जल शिवजी पर चढ़ा देने से, मन्दिर बनवाने से, मन्दिर में झाड़ू लगा देने से, पुराणों के पाठ ही नहीं केवल एक-दो श्लोक सुन लेने मात्र से इत्यादि सैकड़ों प्रकार से सस्ती से सस्ती मुक्ति प्राप्त करने का विधान आपको पुराणों में लिखा हुआ मिल जायेगा।

बड़े से बड़ा पाप कर डालने पर भी उससे छूटने की सरलतम विधियाँ पुराणों में दी हैं तो फिर कौन व्यक्ति होगा जो सदाचार-स्वाध्याय, ईश्वराधना, योग-यज्ञ-तप आदि के अनुष्ठान में समय लगायेगा?

देश में बुराइयों के प्रति निर्भयता पैदा करने में पुराणों का बड़ा हाथ रहा है। वेद की आदर्श मर्यादाओं का विध्वंस इन्हीं पुराणों ने किया है। वैदिक शास्त्रों ने जहां ज्ञानोपार्जन एवं कर्मकाण्ड की ओर मानव को प्रेरित किया है, वहाँ पुराणों ने उनके विपरीत स्वर्ग एवं मोक्ष के सरल मार्ग दर्शाकर जनता को दुराचारी बनाने में बड़ा भारी योगदान दिया है।

कहा जाता है कि पुराणों में इतिहास की बहुमूल्य सामग्री दी हुई है। परन्तु जिन्होंने पुराणों को अन्धविश्वास त्यागकर पढ़ा है। वे जानते हैं कि पुराणों में वर्णित इतिहास सम्पूर्ण काल्पनिक कहानियों के रूप में मौजूद है।

वह भी ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, इन्द्र व दुर्गा के युद्धों एवं उनमें देवताओं की विजय व उत्कर्ष दिखाने मात्र के लिए सूत लोगों द्वारा गढ़ा गया है। लगभग सारे ही पुराणों में अधिकतर एक ही प्रकार की कथाओं व कहानियों का वर्णन है। केवल वर्णन शैली में भिन्नता मिलती है।

भविष्य पुराण के प्रति सर्ग पर्व को ही हम ऐसा पाते हैं, जिसमें भारत के राज्य वंशों का, यवन

राज्य का तथा अंग्रेजों के भारत आगमन तथा 10वें लार्ड तक का इतिहास कुछ ठीक-ठीक दिया गया मिलता है और उसके बारे में यह निश्चित है कि यह पुराण अंग्रेजी राज्यकाल में बनाया गया है और इस पुराण का उल्लेख सभी पुराणों में होने से स्पष्ट है कि सारे पुराणों का पुनर्गठन अंग्रेजी राज्य में हुआ है।

इस पुराण को छोड़कर शेष पुराणों में ऐतिहासिक दृष्टि से कोई सामग्री नहीं दी है। पुराणों की जिन-जिन कथाओं में व्यक्तियों या देवताओं के नाम दिये हैं, उन नामों को गढ़ने की शैली तथा उनकी उत्पत्ति की जो कथाएं उनमें दी है, उन्हें यदि ध्यानपूर्वक देखा जायेगा तो वे स्वयं कल्पित समझ में आ जायेंगी।

भारत को देवतावाद की कल्पना सिर्फ पुराणों की ही देन है। जिस पुराण में एक देवता की प्रशंसा दी है तो उसमें अन्य सभी देवताओं की घोर निन्दा भी दी है।

सारे पुराण देवताओं की निन्दा स्तुति की कथाओं से भरे पड़े हैं। दृष्टान्त के लिए हम एक प्रमाण नीचे देते हैं। शिवजी की महानता का वर्णन करते हुए पुराणकार लिखता है, देखिए—

सारे देवता शिवजी के नौकर हैं

शिव सामान्य वक्तारं शिव सामान्य दर्शिनम्।

दृष्ट्वा स्नायात् सचैलं सत् शिव सामान्य सगिनम्॥

महेशस्यैव दासोऽयं विष्णुस्तेनानुकम्पितः।

श्रुति स्मृति पुराणानां सिद्धान्तोऽयं यथार्थतः॥

इन्द्रोपेन्द्रादयः सर्वे महेशस्यैव किंकराः।

तेन तुल्यो यदा विष्णुर्ब्रह्मवायदि गद्यते॥

षष्ठि वर्ष सहस्राणि विष्टायां जायते कृमिः।

—(सौर पुराण अध्याय 40)

अर्थात्— जो मनुष्य शिवजी के समान विष्णु को देखता है व शिवजी के समान ब्रह्मा आदि देवताओं को बताता है, वह पापी है। उसे देखकर कपड़ों सहित स्नान करना चाहिए।

विष्णु शिवजी के नौकर हैं, यह श्रुति स्मृति, और पुराणों का सिद्धान्त है। इन्द्रादि सभी देवता शिवजी के नौकर हैं।

जो मनुष्य ब्रह्मा, विष्णु आदि को शिवजी के समान कहता है, वह मरकर 60 हजार साल तक पाखाने का कीड़ा बनेगा।

इसी प्रकार के वर्णन अन्य पुराणों में विष्णु की प्रशंसा व शिव आदि की निन्दा में दिये गये हैं। इससे यह स्पष्ट है कि पुराण भिन्न-भिन्न समय में भिन्न-भिन्न साम्प्रदायिक लोगों के द्वारा अपने-2 मत व देवता की प्रशंसा में लिखे गये ग्रन्थ हैं।

चतुर लेखकों ने उन पर अपना नाम तो नहीं दिया पर व्यास जी के नाम से उनको प्रसिद्ध कर

दिया ताकि जनता में उनकी मान्यता में कोई सन्देह न रहे, बल्कि उनकी प्रमाणिकता पर व्यास जी की मोहर लग जाये।

यदि फिर भी कोई पौराणिक विद्वान यह कहने की धृष्टता करे कि-“अष्टादश पुराण व्यास जी कृत ही हैं”, तो हम उसके इस दम्भपूर्ण दावे के खण्डन के लिए पुराण में से उनके भिन्न-भिन्न रचियताओं के नामों की सूची उपस्थित करते हैं।

हमारा यह दावा नहीं है कि पुराणकर्ताओं की यह सूची सत्य ही है, किन्तु इस पुराण के प्रमाण से यह तो सिद्ध हो ही जायेगा कि वर्तमान “18 पुराण व्यासकृत नहीं हैं” चूंकि यह सूची सनातन धर्म के मान्य पुराण में दी है, अतः पुराणों को मान्य समझने वालों के मुँह पर इस प्रमाण से ताले लग जायेंगे।

पुराण बनाने वालों की सूची

अष्टादश पुराणानि केन प्रोक्तानि किं फलम्।
ब्रूत मे विदुषां श्रेष्ठा वेद शास्त्र परायणाः॥ 8॥
इति श्रुत्वा वचो रम्यं विद्वान्सः शास्त्रकोविदाः।
अब्रुवन्वचनं रम्यं कृष्णांशंसर्वं धर्मगम्॥ 9॥
पराशरेण रचितं पुराणं विष्णु दैवतम्।
शिवेन रचितं स्कान्दं पाद्यं ब्रह्ममुखोद्भवम्॥ 10॥
शुक्र प्रोक्तं भागवतं ब्राह्मं वै ब्रह्मणाकृतम्।
गारुडं हरिणा प्रोक्तं षड् वै सात्विकं संभवाः॥ 11॥
मत्स्यं कूर्मो नृसिंहश्च वामनः शिव एव च।
वायुरेतत्पुराणानि व्यासेन रचितानि वै॥ 12॥
राजसाः षट्स्मृता वीर कर्मकाण्डमयाभुवि।
मार्कण्डेयं च वाराह मार्कण्डेयेन निर्मितम्॥ 13॥
आग्नेयमगिराश्चैव जनयामास चोत्तमम्।
लिंगं ब्रह्माण्ड के चापि तण्डिना रचिते शुभे॥ 14॥
महादेवेन लोकार्थे भविष्यं रचितं शुभम्।
तामसाः षट्स्मृताः प्राज्ञैः शक्ति धर्मपरायणाः॥ 15॥

-(भविष्य पुराण प्रति सर्ग पर्व खण्ड 3 अध्याय 28)

अर्थ- हे वेद शास्त्र के जानने वालो विद्वान्! मुझे बतलाओ कि अठारह पुराणों को किन लोगों ने बनाया व उनका क्या फल है? यह सुन्दर वचन सुनकर सब कुछ जानने वाले कृष्णांश से उत्पन्न विद्वान् ने कहा॥ 8-9॥

विष्णु पुराण-पाराशर ऋषि ने व स्कन्द पुराण शिवजी ने बनाये हैं। पद्म पुराण-ब्रह्मा के मुख से

उत्पन्न हुआ है। भागवत पुराण-शुक्राचार्य ने, ब्रह्म पुराण-ब्रह्मा ने तथा गरुड पुराण-हरि ने बनाये हैं। यह छः पुराण सात्विक पुराण हैं।

मत्स्य, कूर्म, नृसिंह, वामन, शिव तथा वायु ये छः पुराण व्यास जी ने बनाये हैं। ये छः राजस पुराण हैं, जो कर्मकाण्ड के लिए हैं।

मार्कण्डेय तथा वाराह पुराण, मार्कण्डेय मुनि ने बनाये हैं। अग्नि पुराण, अंगिरा ऋषि ने बनाया है। लिंग और ब्रह्माण्ड पुराण को तण्डि मुनि ने बनाया है तथा लोक कल्याण के लिए भविष्य पुराण को महादेव जी ने बनाया है। यह छः शक्ति धर्म परायण तामस पुराण हैं।

हमने पीछे देखा कि पद्म पुराण में नरक में ले जाने वाले तामस पुराण-मत्स्य, स्कन्द, लिंग, शिव और अग्नि को बताया है तथा यहां भविष्य पुराण में तामस पुराण-मार्कण्डेय, वाराह, अग्नि, लिंग-ब्रह्माण्ड तथा भविष्य पुराण को माना है।

इस प्रकार अठारह पुराणों में मत्स्य, कूर्म, स्कन्ध, शिव, लिंग, अग्नि, मार्कण्डेय, वाराह, ब्रह्माण्ड व भविष्य पुराण ये 10 पुराण तो पाठकों को नरक में ले जाने वाले रहे। उनका तो बहिष्कार होना ही चाहिए।

शेष 8 पुराण में से कुछ राजस हैं व कुछ सात्विक हैं। उन्हें भी सोच-समझकर पढ़ना चाहिए। यह पुराणों का स्पष्ट आदेश है।

इसमें 18 पुराणों का मान्य होना भी समाप्त हो जाता है। खूबी यह है कि उपरोक्त प्रमाण के अनुसार भविष्य पुराण को शिवजी ने तथा अन्य पुराणों की मान्यतानुसार पुराणों को विष्णु जी के खास अवतार व्यासजी ने बनाया है अर्थात् पुराणों के भक्त पौराणिकों को घोर नरक में भेजकर विष्णु जी व शिवजी उनका सर्वनाश अथवा कल्याण करेंगे? यह एक विचारणीय प्रश्न है। लोगों को अब इससे सचेत हो जाना चाहिए।

—(शेष अगले अंक में)

पाठकों से नम्र निवेदन

‘तपोभूमि’ मासिक पत्रिका के उन पाठकों से निवेदन है जिन्होंने वर्ष 2015 का शुल्क अभी तक जमा नहीं कराया है वे वर्ष 2016 के वार्षिक शुल्क के साथ शीघ्र ही ‘सत्य प्रकाशन’ कार्यालय को भेजकर जमा करायें ताकि पत्रिका व विशेषांक सुचारू रूप से आपको प्राप्त होते रहें। इस वर्ष का विशेषांक “भारत और मूर्तिपूजा” बहुत जल्दी ही आपके हाथों में होगा।

—व्यवस्थापक

शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तकें

श्रीमद् भगवद् गीता (एक सरल अध्ययन)	प्रेस में
गृहस्थ जीवन रहस्य	प्रेस में
संन्या रहस्य	प्रेस में
बालक जो महान बने	प्रेस में
चित्रमय दयानन्द	प्रेस में
श्रीमद् भगवद्गीता तत्व दर्शन	प्रेस में
शान्ता	प्रेस में

काम-वासना

लेखक: बाबू सूरजभान वकील

इन्द्रियों के विषय भोगों में सबसे प्रबल और अधिक उद्धत कामवासना ही है कि जिसकी इच्छा उत्पन्न होते ही मनुष्य अपनी सारी सुधबुध खोकर उन्मत्त बन जाता है। विशेष करके कमजोर आदमियों पर इसका खूब जोर चलता है और वह उनको अपने काबू में करके खूब नाच नचाती है। इसीलिए सभ्य मनुष्यों ने यह रीति निकाली है कि कामेन्द्रिय सदैव छिपाकर ही रक्खी जावे और उसका नाम भी न लिया जाय, जिससे हरवक्त उसकी याद आकर मन में भड़क पैदा न हो। विवाह की प्रथा भी मनुष्यों में इसी गरज से जारी की गई है कि अपनी काम-वासना पूर्ण करने के लिए एक पुरुष के लिए एक स्त्री, और एक स्त्री के लिए एक पुरुष मुकर्रर हो जाय और एक ही स्त्री पर अनेक पुरुषों का झगड़ा होकर खून-खराबा न होने पावे। एक समय था जब विवाह प्रथा जारी रहने पर भी इस विषय में बहुत झगड़े हुआ करते थे और महा अशान्ति छाई रहती थी।

उस समय यह भारतवर्ष हजारों छोटे-छोटे राज्यों में बँटा हुआ था। प्रत्येक राजा हजारों स्त्रियों के साथ विवाह करता था और अपनी सारी उम्र स्त्रियों के ब्याहने में ही गँवाता था। जहाँ कहीं सुन्दरी स्त्री का नाम सुन पाता था वहीं पर अपनी सारी सेना लेकर चढ़ाई कर देता था और हजारों मनुष्यों के सिर कटवा कर-खून की नदियाँ बहाकर जिस तरह हो सकता था उसे लेकर ही आता था। इसी कारण उस समय राजालोग प्रायः ऐसी ही लड़ाइयाँ लड़ते थे और वीर क्षत्रिय भी इसी में अपनी बहादुरी समझते थे। चाहे कितने ही आदमी घास-फूस की तरह क्यों न कट जायँ परन्तु अपने स्वामी को नवीन-नवीन सुन्दरी स्त्रियाँ लाकर देना ही चाहिए-यही उस समय की राजभक्त सेना की कर्तव्यनिष्ठा थी। यही कारण है कि उस समय बड़ी अशान्ति छाई रहती थी और घर में कन्या का जन्म होना महान् दुर्भाग्य समझा जाता था। क्योंकि जब एक कन्या को दस बलवान् आते हों तो ऐसी हालत में बेचारे कन्यावाले की कहाँ तक खैर रह सकती है। उसके सिर पर उस समय महान् विपत्ति आ पड़ती थी और उसके दरबजे पर सैकड़ों मनुष्यों के सिर कट जाते थे, तब कहीं वह कन्या किसी एक के साथ लगती थी और उसी के साथ उसका विवाह होता था। उस समय इन झगड़ों से बचने के लिए लोगों ने स्वयंवर की प्रथा निकाली थी, अर्थात् कन्या जिसे पसन्द करे उसी के साथ विवाह हो जाय। परन्तु उस समय के पराक्रमी पुरुषों ने स्वयंवर में भी दंगा मचाना शुरू कर दिया और किसी एक के गले में जयमाला डाल देने पर भी उस स्त्री को छीन लेने के लिए जोर जुल्म होने लगा। इस प्रकार स्वयंवर की पवित्र भूमि रणचण्डी का क्रीड़ा-स्थल बनने लगी और वहाँ हर्ष तथा मांगलिक कृत्यों की जगह शोक-विषाद, मार-काट तथा लाशों का भयंकर दृश्य दिखाई देने लगा। जब इस तरह यह स्वयंवर की रीति भी कामयाब नहीं हुई तब उच्च जाति के लोगों ने लाचार होकर कन्याओं को पैदा होते ही मार डालने की रीति चलाई।

उस समय राजाओं को नित्य नई-नई नवयौवना स्त्रियों के साथ विवाह करते रहने पर भी वेश्यायें रखने की आवश्यकता पड़ती थी। बहुत करके पंखा झलने और चँवर ढोरने के लिए वेश्याएँ ही रखी जाती थीं। वेश्याएँ नित्य दरबार में आँखों के सामने रहतीं और युद्ध में भी साथ जाती थीं। इनका काम सदैव मनोरंजन करना था। यह छोटे-छोटे राजाओं का हाल था, बड़े-बड़े महाराजा तो हजारों रानियाँ रखते थे और इतने पर भी वेश्याओं से दिल बहलाते थे। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि जिन शूद्रों और म्लेच्छों की परछाई पड़ने से भारत के धर्मात्मा अपने को अपवित्र समझते थे उन्हीं की सुन्दरी कन्याओं को खुशी से अपने घर में डाल लेते थे और अपने रनवास की शोभा बढ़ाते थे। उस धर्मयुग में विवाह के सिवा व्यभिचार भी बहुत प्रवृत्ति बतलाई जाती है। कहा जाता है कि बलवान् राजा अपने अधीन राजाओं की सुन्दर रानियों और प्रजा की खूबसूरत स्त्रियों को छीन मँगाते थे और बेचारी निर्बल प्रजा चूँ तक नहीं करने पाती थी। हिन्दू पुराण तो इस व्यभिचार का यहाँ तक पता बतलाते हैं कि बड़े-बड़े देवता और ऋषि महर्षि भी इस व्यभिचार से नहीं बचे थे।

जो हो, परन्तु इस कलियुग में लोगों ने इस विषय में बहुत कुछ सुधारणा कर ली है। पाश्चात्य देशों में छोटे से छोटे गरीब से लेकर बड़े से बड़े चक्रवर्ती सम्राट तक एकाधिक स्त्री नहीं रख सकते हैं। इन्हीं जड़वादी पाश्चात्यों के संसर्ग से कहिए अथवा समय के फेर से कहिए, भारत के बड़े-बड़े सेठ साहूकार और जमीनदार लोग भी अब एक ही एक स्त्री पर संतोष करने लगे हैं और जो एकाधिक स्त्रियाँ विवाहते हैं वे निन्दा के पात्र बनते हैं। यद्यपि भारत के राजा महाराजा प्राचीन धर्मयुग की देखादेखी अब भी कई कई विवाह करते हैं और वेश्यायें भी रखते हैं, परन्तु वे पहले के मुकाबले में बहुत थोड़ी होती हैं, और धीरे-धीरे उनकी गिनती कम होती जाती है। बल्कि कोई कोई राजा भी अब एकाधिक विवाह करना और वेश्याओं का रखना बुरा समझने लगे हैं। जो राजा महाराजा एकाधिक विवाह करते हैं वे भी पहले के समान चढ़ाई करके नहीं, किन्तु राजीखुशी से करते हैं। इस तरह अब कामवासना की प्रबलता के कारण पहले के समान न तो खून खराबा ही होता है और न अशांति ही फैलती है। परन्तु कुछ दूसरे कारणों से अब भी लोगों की कामतृष्णा दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। इसलिए आज भी सब लोग इसके फंदे में वैसे ही फँसे हुए हैं जैसे कि पहले फंसे थे और अधिक विषय-भोग, वेश्यागमन, परस्त्री-सेवन, हस्तमैथुन, बच्चेबाजी आदि अनेक बुरी लतों के द्वारा अपने को बरबाद कर रहे हैं। भारतवर्ष के लोग जब तक इन बुरी लतों को छोड़कर अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा नहीं करेंगे, तब तक न तो वे पुरुषार्थी ही बन सकते हैं और न उन्नति के क्षेत्र में आगे ही बढ़ सकते हैं। इन बुरी लतों के कारण वे अपनी विद्याबुद्धि और शारीरिक शक्ति को खोकर दिन पर दिन पतित होते जाते हैं। ऐसी हालत में सिवा रोने-धोने और दूसरों की शिकायत करने के और वे कर ही क्या सकते हैं?

कामवासना की इन बुरी लतों से पीछा छुड़ाने के लिए हमारी समझ के अनुसार भारतवासियों को निम्नलिखित उपाय करने चाहिए। जब तक इस बढ़ती हुई कामवासना की लपट को रोकने का उपाय

न किया जायगा—जब तक ब्रह्मचर्य और वीर्य की रक्षा न की जायगी तब तक यह भारतवर्ष अन्य उपायों से कभी नहीं पनप पायेगा।

(1) प्राचीन समय में कन्याओं के जवान होने पर उनके रूपलावण्य और यौवन को देखकर बलवान् पुरुष उनकी प्राप्ति के लिए लड़ाई दंगे किया करते थे। इसलिए लोगों ने इन झगड़ों से बचने के लिए बिल्कुल छोटी उम्र में अपनी कन्याओं का विवाह करना शुरू कर दिया। अब यह प्रथा इतनी लोकरूढ़ और दृढ़ हो गई है कि इसके अनुमोदन में अनेक धार्मिक आज्ञायें तक प्रचलित हो गई हैं। यही कारण है कि यहाँ पर यह प्रथा अब तक चली जा रही है। इस बाल्य विवाह की प्रथा के कारण लोगों का बल-वीर्य घट गया है, सब उत्साह और इरादे हवा हो गये हैं, विचारशक्ति मंद पड़ गई है, जीवनशक्ति नष्ट हो गई है और सब तरह की उन्नति का क्रम रुक गया है। छोटी उम्र में शादी होने और बल-वीर्य के घट जाने से प्रायः सभी स्त्रीपुरुषों में प्रदर और प्रमेह आदि की बीमारियाँ फैल गई हैं। इसी शारीरिक और वीर्य-सम्बन्धी निर्बलता के कारण विषयेच्छा बढ़ती जा रही है और वह अनेक निन्द्य रीतियों के द्वारा पूर्ण की जाती है। इन्हीं सब कारणों से आजकल की सन्तान भी अत्यन्त निर्बल और पुरुषार्थहीन उत्पन्न होने लगी है। कहने का मतलब यह है कि बाल्यविवाह ही इन सब अनर्थों की जड़ है—जिसका दूर करना बहुत लाजमी और जरूरी है।

(2) पाश्चात्य देशों में व्यभिचार दोष स्त्री-पुरुष दोनों को समान रूप से लगता है और व्यभिचारी पुरुष वैसा ही निन्द्य समझा जाता है जैसी कि व्यभिचारिणी स्त्री। इसलिए वहाँ स्त्री भी अपने पति पर उसी तरह व्यभिचार का दोष लगा सकती है जिस प्रकार पुरुष अपनी स्त्री पर लगाते हैं। परन्तु इस परम भारतवर्ष के ऋषि महर्षियों ने अपने दिव्यज्ञान से यह एक परम अद्भुत आविष्कार किया है कि पुरुष तो हजारों स्त्रियों से विवाह करके, शूद्रों तथा म्लेच्छों की कन्याओं और स्त्रियों तक को घर में डालकर, पराई स्त्रियों को छीनकर, खुल्लमखुल्ला व्यभिचारी और वेश्यागामी होकर भी दोषी नहीं होता है, मोक्षप्राप्ति का पात्र बना रहता है, परन्तु स्त्रियाँ एक के सिवा दूसरा पति नहीं कर सकती हैं। वे अपने ऐसे पति की भी भक्त बनी रहने के लिए बाध्य हैं जो उक्त सब दोषों से परिपूर्ण होकर उसका नाम भी न लेता हो और वेश्याओं तथा परस्त्रियों से अनुरक्त रहता हो। यही नहीं, उन्हें चाहिए कि वे ऐसे कुकर्मी पति के मरने पर भी उसके साथ जीतेजी जल मरें या उसके नाम पर धूनी रमाकर जन्म भर रँड़ापा काटें। ऐसी सहनशील स्त्रीजाति उक्त महर्षियों की दृष्टि से अत्यन्त पतित और मोक्ष की अनधिकारिणी है। उन्हें इतने पर भी संतोष नहीं हुआ, उन्होंने यहाँ तक लिख दिया है कि 'स्त्रीचरित्रम् पुरुषस्य भाग्यम् देवो न जानाति कुतो मनुष्यः' अर्थात् स्त्री के चरित्र और पुरुष के भाग्य को देवता भी नहीं जान सकते हैं, फिर मनुष्यों की तो मजाल ही क्या है।

यही कारण है कि आजकल भी इस देश के उच्च जातीय मोक्षगामी पुरुष यद्यपि पहले के समान शूद्र तथा म्लेच्छों की स्त्रियों को अपने घर में नहीं डालते हैं, परन्तु राह चलती चमारियों को छेड़कर और

उनसे माँ-बहिनों की गंदी गालियाँ सुनकर भी उच्च ही बने रहते हैं और नीच जातीय वेश्याओं के साथ खुल्लमखुल्ला व्यभिचार करके भी दोषी नहीं होते हैं। वे अपनी पतिव्रता स्त्री का सारा गहना उतार-उतार कर वेश्याओं को अर्पण कर आते हैं और इतने पर भी त्रिया-चरित्र की कथायें सुना-सुनाकर उसके प्रति अपनी घृणा प्रकट करते हैं। इस विषय में एक तमाशा यह है कि ये पुरुष परमव्यभिचारिणी स्त्रियों अर्थात् वेश्याओं को बिलकुल दोषी नहीं समझते हैं। वे उन्हें द्रव्यादि देकर अपने मांगलिक कामों में बुलाते और छोटे-बड़ों, बूढ़े, स्यानों, विरादरी मुखियाओं, गुरुजनों, धर्मात्माओं और पंडितों को इकट्ठा करके उनके मुंह से व्यभिचार का उपदेश सुनवाते हैं। व्यभिचार की अग्नि को पूर्णरूप से प्रज्वलित करने के लिए इस वेश्यानृत्य के सिवा और दूसरा कोई उत्तम साधन नहीं है। इसी तरह अनेक मनुष्य व्याह-शादियों, मेलों-ठेलों और तीर्थस्थानों में पराई स्त्रियों को घूरने और उनकी चर्चा करने में कुछ भी बुराई नहीं समझते हैं, बल्कि उनको अपने काबू में लाने और उन्हें व्यभिचारिणी बनाने के लिए तरह-तरह के प्रयत्न करते हैं। इस तरह जो स्त्रियाँ उनके काबू में आ जाती हैं उनकी वे बहुत कदर करते हैं और उन पर अपना जान-माल निछावर करने को तैयार हो जाते हैं। हाँ, अपने घर की स्त्रियों का बेशक किसी को पल्ला भी नहीं दिखाना चाहते हैं और इसलिए उन पर बहुत कड़ा पहरा रखते हैं। उनके इस व्यवहार का यह मतलब निकलता है कि पुरुषजाति व्यभिचार को बिलकुल बुरा तो नहीं समझती है, परन्तु स्वार्थवश वह इतना अवश्य चाहती है कि हमारी स्त्रियाँ हमारे ही काम आवें। अर्थात् चोरों की तरह चोरी को तो बुरा नहीं समझते हैं, परन्तु यह जरूर चाहते हैं कि हम तो सबका माल चुरायें परन्तु हमारा कोई न चुरावे।

पाठकगण समझ गये होंगे कि इस आपापोखीपन से कैसी गड़बड़ी मचती है, कैसी अशान्ति फैलती है, व्यभिचार की कितनी वृद्धि हाती है और पारस्परिक बुराई फैलकर मनुष्य जाति के सुप्रबन्ध में कितना धक्का लगता है। अतएव मनुष्य जाति की सुखशान्ति और उन्नति के लिए यह जरूरी है कि अपनी एक विवाहिता स्त्री के सिवा अन्य किसी स्त्री की ओर कुदृष्टि देखने या उससे अनुचित सम्बन्ध रखने पर पुरुष भी उतना ही दोषी समझा जाय जितनी कि स्त्री समझी जाती है और वेश्यानृत्य कराने में पुरुषजाति पर उतना ही लांछन लगाया जाय जितना कि उस स्त्री पर लगाया जा सकता है जो स्त्रियों की सभा जोड़कर उसमें किसी महाव्यभिचारी पुरुष को नचावे और उससे व्यभिचार के गीत गवाकर आनन्द मनावे।

(3) एक पुरुष की अनेक स्त्रियाँ होने से वह न तो सब पर सच्ची प्रीति ही रख सकता है और न सबको अपना हृदय ही दे सकता है। क्योंकि अगर वह ऐसा करना भी चाहे तो एक दिल के टुकड़े नहीं किये जा सकते हैं। वास्तव में वह अपनी पाशविक लालसा को पूर्ण करने के लिए बाहर से तो सब पर बनावटी प्रीति दिखलाता है परन्तु सच्ची प्रीति एक पर भी नहीं रखता है। इसी तरह उसकी स्त्रियाँ भी उस पर बाह्य प्रेम रखती हैं। चाहे वे लोक लज्जा के कारण उसके मरने पर उसकी लाश के साथ सती भले ही हो जायँ, परन्तु उस पर उनकी सच्ची प्रीति होना एक तरह से असंभव ही है इसीलिए यह पुरानी कहावत प्रसिद्ध है कि 'त्रियाचरित जाने नहिं कोई, खसम मारकर सती होई।' इसके सिवा एक पुरुष अनेक

—शेष पृष्ठ संख्या 16 पर

ब्रह्मचर्य-विज्ञान

लेखक:—जगननारायणदेव शर्मा

ब्रह्मचर्य-सूक्त

(4)

इयं समितृथिवी द्यौर्द्वितीये तान्तरिक्षं समिधा पृणाति।

ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसापिपति॥

(1) यह पृथिवी पहली समिधा है। (2) दूसरी समिधा आकाश है, जिससे वह अन्तरिक्ष को प्रसन्न करता है और (3) ब्रह्मचारी समिधा, मेखला, श्रम और तप से लोक को पूर्ण करता है।

(1) पहली 'परा विद्या' है, जिससे भौतिक वस्तुओं का बोध होता है।

(2) दूसरी 'अपरा विद्या' है जिससे आध्यात्मिक अनुभव किया जाता है और जिसके प्राप्त होने पर आत्मानन्द प्राप्त होता है।

(3) और ब्रह्मचारी अपनी विद्या, कटिबद्धता, परिश्रम तथा अनुष्ठान से लोगों को तृप्त करता है।

ब्रह्मचारी अपने आचार्य से भौतिक और आध्यात्मिक विद्यायें सीखता है। आध्यात्मिक ज्ञान हो जाने से उसका आत्मा सन्तुष्ट हो जाता है। तत्पश्चात् वह अपने आचार्य से विलग होकर अपनी विद्या, कटिबद्धता, परिश्रम और अध्यवसाय से समाज-सेवा में लग जाता है। यहीं से उसका सामाजिक जीवन प्रारम्भ होता है।

(5)

पूर्वो जातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी, धर्मं वसान्तपसो दतिष्ठत्।

तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्मज्येष्ठं । देवाश्च सर्वे अमतेन साकम्॥

(1) ब्रह्म के पहले ब्रह्मचारी होता है। (2) उष्णता के साथ तप से ऊपर उठता है। (3) उससे ज्येष्ठ ब्रह्म उत्पन्न होता है और (4) सब देव अमृत के साथ रहते हैं।

(1) ब्रह्मचारी ज्ञान-प्राप्ति के पहले से ब्रह्मचर्य का पालन करता है।

(2) वह अपने ब्रह्मतेज के प्रताप से उन्नति करता है।

(3) ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन से ही उसे श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त होता है।

(4) और परमोत्तम ज्ञान के होने पर, उसके सभी दिव्य गुण, सुख के साधन बन जाते हैं।

ब्रह्मचारी जब तक विद्याध्ययन न करले, तब तक ब्रह्मचर्य (वीर्य-रक्षण) का यथावत पालन करे। विद्या से ब्रह्मतेज और उस तेज के कारण ही, वह आत्म-विकास को प्राप्त हो सकता है। क्योंकि जिसका आत्मा विकसित होता है, वही पुरुष धार्मिक दृष्टि से श्रेष्ठ ज्ञान का अधिकारी है। जो ज्ञानी होता है, उसके सद्गुण उसे निश्चय ही मोक्ष प्राप्त करा देते हैं।

(6)

ब्रह्मचार्यतिसमिधा समिद्धःकार्णवसानो दीक्षितो दीर्घश्मश्रुः।

ससद्यएति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं, लोकान्संगृह्य मुहुराचरिक्त्वा॥

(1) ब्रह्मचारी समिधा से विभूषित, कृष्ण हरिण-चर्म पहनता हुआ और दीर्घ श्मश्रु को धारण करता हुआ आगे बढ़ता है। (2) वह पूर्व से उत्तर समुद्र तक शीघ्र पहुँचता है और (3) लोक-संग्रह करके बार-बार उत्तेजित करता है।

(1) ब्रह्मचारी अपने को विद्या से उन्नत करता है। वह काले हरिण का चर्म पहनता है; और मूछ-दाढ़ी को बढ़ने देता है। वह प्रगति करने के लिये चेष्टित रहता है।

(2) इस प्रकार वह विद्या का सांगोपांग अध्ययन कर, ज्ञानरूपी समुद्र के आदि से अन्त तक पहुँचता है।

(3) और संसार के साथ सद्ब्यवहार कर, उसे सत्कर्म के लिये उत्साहित करता है।

ब्रह्मचारी पहले विद्याध्ययन से अपनी उन्नति करता है। काले रंग के मृगचर्म और बड़े-बड़े केश आदि के धारण करने से उसकी पवित्रता, सरलता और निरभिमानता सूचित होती है। अर्थात् वह शुद्ध और साधु-वेष में रहता है। वह अपनी प्रगति पर विशेष ध्यान देता है। इसी से वह थोड़े ही समय में वेद-वेदांगों के ज्ञान में पारंगत हो जाता है। इसके अनन्तर वह कार्यक्षेत्र में पदार्पण करता है। यहाँ वह अपने अनुपम उपदेशों से लोगों में एकता उत्पन्न करता है, और उन्हें सत्कर्म करने के लिये बार-बार उत्साहित करता रहता है। अर्थात् जनता को सुसंस्कृत करना ही उसका ध्येय होता है।

(7)

ब्रह्मचारी जनयन्ब्रह्मापो लोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम्।

गर्भोभूत्वाऽमृतस्य योनाविन्द्रोह भूत्वाऽसुरां स्ततर्ह॥

ब्रह्मचारी लोक, प्रजापति और तेजस्वी परमेश्वर को उत्पन्न करता हुआ, अमृत के गर्भ में रहकर, इन्द्र होकर, निश्चयपूर्वक असुरों का नाश करता है।

जो ब्रह्मचारी प्रजा, राजा और परमात्मा को लुप्त करने के लिये, सत्कर्म कर रहा था, वही अब ज्ञान के गूढ़ विषयों से परिपूर्ण होकर-विद्वानों में श्रेष्ठ बनकर-दुर्गुणों का नाश करता है। अर्थात् संसार को उपदेश देता है।

ब्रह्मचारी प्रजा, राजा और ईश्वर को प्रसन्न रखने के लिये ब्रह्मचर्य-पूर्वक विद्या का अध्ययन करता है। इससे सत्कर्म का जन्म-दाता है। क्योंकि इस संसार में राजा, प्रजा और ईश्वर-इन्हीं तीनों के प्रति ही सभी कर्तव्य होते हैं। जब वह विद्या से पूर्ण हो जाता है, तब सुखमय गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर देश, जाति और समाज की योग्य सेवा करता है। वह अपने उत्तम विचार का प्रचार कर, लोगों के कुसंस्कारों और दुर्गुणों का नाश करता है।

(8)

आचार्यस्ततक्षनभसी उभे इमे उर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवंच।

ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी, तस्मिन्देवाः सम्मनसो भवन्ति॥

(1) आचार्य बड़े गम्भीर दोनों लोकों-पृथिवी और आकाश को बनाता है। (2) ब्रह्मचारी अपने तप से उनकी रक्षा करता है। और (3) देव लोग उसके मन के साथ रहते हैं।

(1) आचार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण 'भौतिक और आध्यात्मिक' ज्ञान का उपदेश करता है।

(2) ब्रह्मचारी उनको अपने अनुष्ठित व्रत के साथ हृदयंगम करता जाता है।

(3) और इस प्रकार उसके (ब्रह्मचारी) सभी दिव्य गुण विकसित होते हैं।

आचार्य ही भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान का कर्ता है। जब वह अपने शिष्य को पण्डित बना देता है, तब वह भी उसी की भाँति अपनी प्राप्त विद्या की रक्षा करता है। आचार्य जो कुछ उस (ब्रह्मचारी) को सिखाता है, वह उसे भूलने नहीं देता। ब्रह्मचर्य के प्रताप से उसकी विद्या रक्षित रहती है, समयानुकूल बढ़ती भी जाती है। इसलिये उसके दिव्य गुण सारे संसार में विख्यात होते हैं।

(9)

इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामाजभार प्रथमोदिवंच।

ते कृत्वा समिधा वुपास्ते तथोरार्पिता भुवनानि विश्वा॥

(1) पहले ब्रह्मचारी ने इस विस्तृत भूमि और आकाश की भिक्षा ग्रहण की। (2) अब उनकी दो समिधायें बनाकर, उपासना करता है। और (3) इन्हीं के बीच में सब भुवनों की स्थिति है।

(1) ब्रह्मचारी प्रथमतः भौतिक और आध्यात्मिक विषयों की शिक्षा प्राप्त करता है।

(2) फिर उन परा और अपरा विद्याओं का मनन करता है। जिन्हें आचार्य उसे देता है।

(3) और इन्हीं दोनों के बीच में सब कुछ भरा पड़ा है।

ब्रह्मचारी अपने आचार्य से भौतिक और आध्यात्मिक ज्ञान की भिक्षा लेता है। 'ऐहिक और पारलौकिक' विद्या की प्राप्ति से उसका उद्देश्य सिद्ध हो जाता है। इस यज्ञ के पूर्ण हो जाने पर फिर उसके सारे मनोरथ स्वयं सधते हैं। यही उसकी भिक्षा का आदर्श है।

(10)

अर्वागन्यः परोअन्यो दिवस्पृष्ठाद्गुहानिधी निहितौ ब्राह्मणस्य।

तैरक्षति तपसा ब्रह्मचारी, तत्केवलं कृणुते ब्रह्म विद्वान्॥

- (1) एक पास है और दूसरा आकाश से भी दूर है। वे दोनों कोश ब्राह्मण की गुहा में धरे हुये हैं।
(2) ब्रह्मचारी अपने तप से उनकी रक्षा करता है। वह रहस्य ब्रह्म-विद्वान् ही जान सकता है।
(1) भौतिक ज्ञान पास, और आध्यात्मिक ज्ञान बहुत दूर है। वे दोनों वेद में छिपे हुये हैं।
(2) ब्रह्मचारी अपने तपोऽनुष्ठान से उन दोनों को अपने अधिकार में कर लेता है।
(3) इन दोनों के रहस्य को ब्रह्मज्ञानी पुरुष ही समुचित जानता है।

‘भौतिक-ज्ञान’ से भी कठिन ‘ब्रह्म-ज्ञान’ है। आचार्य उन दोनों को, अपने शिष्य को वेदाध्ययन से सिखला देता है। वह भी उसको फिर किसी प्रकार नष्ट नहीं होने देता। जो पुरुष वेद का ज्ञाता नहीं, उसे यह रहस्य नहीं विदित होता।

(11)

अर्वागन्य इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसौ अन्तरेमे।

तथोः श्रयन्ते रश्मयोऽधि दृढा स्तानातिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी॥

- (1) यहाँ एक है, और दूसरी इस लोक से बहुत दूर है। ये दोनों अग्नि, पृथ्वी और आकाश के बीच में मिल जाती हैं। (2) उनकी तीव्र किरणें फैलती हैं और ब्रह्मचारी उनको तप से अधिकार में करता है।
(1) कर्म ऐहिक और ज्ञान पारलौकिक-ये दो अग्नि हैं। इन दोनों का मिलाप भौतिक और आध्यात्मिक साधनों से होता है।
(2) इन दोनों की गति बड़ी तीव्र है, जो सर्वत्र प्रस्फुटित होती है। ब्रह्मचारी उन दोनों को अपनी तपस्या से साध लेता है।

ब्रह्मचारी आचार्य के यहाँ रहकर ‘वैदिक कर्म’ और ‘आत्मज्ञान’ दोनों की साधना करता है। ‘कर्म और ज्ञान’-दोनों में ही गूढ़ तत्व भरा हुआ है। जहाँ ये दोनों मिलते हैं-जहाँ इनका समान रूप से आदर किया जाता है, वहीं अच्छी प्रगति और सफलता मिलती है। इसी से ब्रह्मचर्य की अवस्था में दोनों का बराबर अनुष्ठान करना पड़ता है।

—(शेष अगले अंक में)

पृष्ठ संख्या 12 का शेष—

स्त्रियों की कामतृष्णा को पूर्ण भी नहीं कर सकता है। इसीलिए प्राचीन समय में जब एक-एक पुरुष सैकड़ों-हजारों स्त्रियाँ रखता था, तब उन स्त्रियों को अनेक कुकर्म करने पड़ते थे और अनेक मायाचार रचने पड़ते थे। ऐसी हालत में नौकर चाकर, ऊँच-नीच जो कोई मिल जाता था उन्हीं के द्वारा वे अपनी कामाग्नि शान्त किया करती थी। यही कारण है कि उस समय के लेखकों ने स्त्री जाति को यहाँ तक बदनाम किया है कि व्यभिचार, मायाचार और नीच पुरुषों से स्नेह करना उनका स्वाभाविक धर्म ठहरा दिया है।

—(शेष अगले अंक में)

मनुष्य पंच किस प्रकार बन सकता है?

लेखक:- पं० हनुमानप्रसाद शर्मा

एक महानन्द नामक पुरुष कुछ थोड़ा ही पढ़ा लिखा और इतना दीन था कि उसके निज का मकान भी न था और एक शिवाले की कोठरी में किसी राज्य में जैपुर की ओर से रहा करता था। एक दिन उसके ग्राम में दो मनुष्यों में कुछ झगड़ा हो रहा था। महानन्द बीच में कुछ बोल उठा। तब तो उन दोनों झगड़ालुओं ने महानन्द से कहा कि “तू कहाँ का पंच है जो बीच में बोलता है?” यह सुनकर महानन्द ने सोचा कि पंच कोई बड़ी अच्छी चीज है, बस यहीं से महानन्दजी के हृदय में पंच बनने का ख्याल हुआ और यहाँ तक कि पंच बनने के लिए महानन्द ने खाना-पीना, सोना सब कुछ छोड़ दिया और उदासीन वृत्ति से वह निशि दिन पंच बनने के उपाय सोचा करता था। महानन्द की स्त्री ने उसकी यह दशा देख कहा कि-“स्वामिन् आप भोजन न करने, जल न पीने वा न सोने या दिन-रात शोक में रहने से थोड़े ही पंच बन जायेंगे, इसलिए आप अच्छी तरह भोजन कीजिये और प्रसन्न रहते हुये आपको जो उपाय में बताऊँ वह कीजिये, तब आप पंच बनेंगे।” महानन्द तो इस चाह में था ही इसलिए कहा-“प्रिये, बतलाइये वह क्या उपाय है?” स्त्री ने कहा-“आप अपने निज के कामों अर्थात् भोजन वस्त्र के उद्योग के इतर जितना समय आपको मिले उस समय में आप बिना किसी अपने स्वार्थ के केवल परस्वार्थ और संसार के उपकार के लिए सबका हित किया कीजिये और वह बचा हुआ समय ग्राम के लोगों के कामों में व्यय कीजिये। बस, कुछ दिनों में आप पंच बन जायेंगे।” महानन्द ने यह व्रत धारण कर लिया। भोजन वस्त्र के उद्योग के इतर जितना समय बचता, उसमें महानन्द गाँव में जिस किसी के यहाँ लड़का लड़की का विवाह होता जाकर बिना कहे उसके काम करता। जो कुछ कमाने में द्रव्य बचता भूखों को दिया करता। किसी को बीमार सुनता तो उसके पास जा बैठता। उसके काम करता कोई मर जाय तो उसके साथ जाता, आदि आदि परहित किया करता था। एक दिन ऐसा समय आया कि उसी ग्राम में एक खत्रानी का बेटा जो अपने घर की करोड़पति थी और उसके एक ही बेटा था बहुत ही बीमार हो गया। इस खत्रानी के पुत्र के पास जितने पुरोहितादि रहते थे उन सबकी यह नियत थी कि अगर यह खत्रानी का पुत्र मर जाय तो द्रव्य सब हमी लोगों को मिले। यह समाचार किसी प्रकार खत्रानी को सूचित हो गया। उसने एक बुढ़िया से यह सब वृत्तान्त कहा। बुढ़िया ने कहा-“इस ग्राम में एक महानन्द नामक पुरुष रहता है जो बड़ा ही परोपकारी है, यदि उसे खबर हो जाय तो वह आपके लड़के के पास रहेगा और बड़ी अच्छी प्रकार औषधि आदि का प्रबन्ध करेगा।” खत्रानी ने उसी बुढ़िया के द्वारा महानन्द को खबर करा दी। महानन्द आकर हर प्रकार से उस खत्रानी के पुत्र की सेवा, औषधि आदि प्रबन्ध करने लगा और खत्रानी ने पूर्व पुरोहितादि सबको निकाल बाहर किया। कुछ दिन के बाद खत्रानी का पुत्र अच्छा हो गया, तब तो खत्रानी के हृदय में यह

ख्याल पैदा हुआ कि इसने हमारे पुत्र की बहुत कुछ सेवा की है, अतः इसे कुछ देना चाहिये। यह सोच खत्रानी 10 हजार रुपया महानन्द को देती रही परन्तु महानन्द ने खत्रानी के बहुत कुछ प्रार्थना करने पर भी न लिया। अब उसके पुत्र के हृदय में यह भाव उत्पन्न हुआ कि यदि महानन्द रुपया नहीं लेता। तो इसके उपकार का कुछ प्रत्युपकार करना चाहिये। यह इस उद्योग ही में था कि उसको मालूम हुआ कि महानन्द के हृदय में पंच बनने का ख्याल है। बस खत्रानी के करोड़पति पुत्र ने अपने मन में यह ठहरा लिया कि मैं उसे पंच बनाऊँगा। खत्री का पुत्र राजा की सभा का मेम्बर था। अतएव अब जितने भी मामले इस खत्री के पुत्र के यहाँ आते, सबमें महानन्द को मध्यस्थ किया करता। इस प्रकार महानन्द का तमाम बस्ती में शोर हो गया। अब के बार जब राज्य में पंचों का चुनाव हुआ तो महानन्द का नाम आया, परन्तु कुछ लोगों ने महानन्द के पंच बनने में विरोध किया, इस कारण महानन्द पंच न बन सका। तब तो लोगों ने महानन्द जी से कहा कि “अब आप पंच बनने का उद्योग छोड़ दें, देखो आया अवाया नाम जब आप नहीं चुने गये तो अब आप पंच नहीं हो सकते।” महानन्द ने कहा—“जहाँ हमें कोई पूछता ही न था वहाँ हमारा नाम तो आया और इस साल यदि नाम आया तो आगे पंच भी बन जाऊँगा।” महानन्द उसी भाँति अपने काम करता रहा। अगले वर्ष लोगों ने महानन्द को पंच चुन लिया परन्तु कुछ लोगों ने राजा के पास जाकर शिकायत की कि “महाराज पंच की बड़ी जिम्मेदारी है, और लोगों ने एक महानन्द को जिसके घर बार कुछ नहीं और जो महा कंगाल न कुछ पढ़ा न लिखा, उसे पंच चुना है।” राजा यह सुनकर हैरान हुआ कि जब उसमें कोई बात नहीं फिर लोगों ने उसे पंच क्यों चुना? अतः राजा ने ग्राम के लोगों को बुलाकर पूछा कि “जब महानन्द में न विद्या है, न धन है, न बल है फिर आप लोगों ने उसे पंच क्यों चुना है?” लोगों ने राजा को उत्तर दिया कि—“विद्या तो हम तब देखते जब हमें उससे पढ़ना होता और बल हम तब देखते जब हमें उससे युद्ध करना होता और धन हम तब देखते जब हमें उससे कर्जा लेना होता, हमें तो ऐसा पंच चाहिये जिसमें प्रजा का हित हो, अन्याय वा जन्न किसी पर न हो, सो यह गुण महानन्द के बराबर ग्राम भर में किसी में नहीं।” राजा साहब को महानन्द के गुण सुनके बड़ा ही प्रेम हुआ। राजा ने महानन्द को बुला बड़ी-बड़ी सेवा की और 10 मौजे जागीर काट दिया। पर महानन्द जी जैसे पहले अपनी टूटी फूटी झोपड़ी में रहते थे और 5) १० माहवारी में अपना निर्वाह करते थे उम्मी प्रकार करते रहे और जागीरवाले 10 गाँवों में जो मुनाफा होता, उसे यह कह कर कि यह जागीर मुझे प्रजा-हित करने से मिली है अतः यह जागीर मेरी नहीं किन्तु प्रजाहित की है, प्रजा-हित के कामों में लगा देते। महानन्द का ऐसा बर्ताव देख अगले वर्ष में सब लोगों तथा राजा ने महानन्दजी को पंच क्या बल्कि सरपंच नियत किया।

पंचभिः सह गन्तव्यं स्थातव्यं पंचभिः सह।

पंचभिः सह वक्तव्यं न विरोधेः पंचभिः सह॥



प्रेम विचित्र वस्तु है

रचयिता: कविवर पण्डित रामनरेश त्रिपाठी

(1)

प्रेम विचित्र वस्तु है जग में अद्भुत शक्ति-निधान,
प्रेम मनुज को जागृति में भी रखता सुप्त समान॥
प्रेम-नशा जब छा जाता है आँखों में भरपूर,
उसी दिवस से समझो उनसे हुई नींद भी दूर॥

(2)

प्रेम एक है पर प्रभाव है उसका युगल प्रकार।
प्रेम संयोग वियोग काल में सुखप्रद, दुखद अपार॥
मधुर सुगंध विहीन पुष्प ज्यों चन्द्र चन्द्रिका-हीन।
त्यों फीका जग में मनुष्य का जीवन प्रेम-विहीन॥

(3)

प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेमरूप भगवान।
प्रेम विश्व का संस्थापक है, प्रेम विश्व का प्राण॥
प्रेम जाति का जीवन जग में, प्रेम अभेद अशोक।
प्रेम सभ्यता का भूषण है, प्रेम हृदय-आलोक॥

(4)

कड़वी सब पीड़ा है उनसे होता चित्त अधीरा।
पर मीठी लगती है जग में सत्य प्रेम की पीर॥
व्याकुल हुआ प्रेम-पीड़ा से जिसका कभी न प्राण।
भाग्यहीन उस निष्ठुर का है उर सचमुच पाषाण॥

(5)

जिस पर दया दृष्टि करते हैं मंगलमय भगवान।
सच्ची प्रेम यन्त्रणा से वह पीड़ित होता प्राण॥
जिसने अनुभव किया प्रेम की पीड़ा का आनन्द।
उससे बढ़कर कौन जगत में सुखी और स्वच्छन्द॥

(6)

प्रेमोन्मत्त हृदय में रहता द्वेष न वैर विरोध,
बसा प्रेम तब निकल भगे सब लोभ मोह मद क्रोध।
मधुर-प्रेम-वेदना-विमोहित सुख निद्रामय मस्त,
लखता है प्रियतम छवि दृग भर फिर कर जगत समस्त॥

(7)

फूल पंखड़ी में पल्लव में प्रियतम रूप निहारा
तुरत उमड़ आता है उसके उर में मोद अपार॥
कली बिलोक मुसकुरा उठता करके मत्त प्रलाप।
“देखें कब तक इन पत्तों में लुके रहेंगे आप”॥

(8)

ज्योत्सना कभी सरित जल में मिल करती केलि विलास।
उज्ज्वल विमल रजत कणिकामय रेताराशि पर वास॥
प्रेम भरे अधखुले दृगों से लख शशि ओर सहास।
प्रेमी समझ मुग्ध होता है प्रियतम-हास-विकास॥

(9)

उसे प्रेममय लख पड़ता है यह समस्त संसार।
प्रेम मग्न करता है वह नित प्रेमोद्यान-विहार॥
प्रेम-वेदना-व्यथित हृदय से मथित प्रेम की आह।
कढ़ कर भूतल में भरती है नवजीवन-उत्साह॥



सत्य प्रकाशन के पुनः प्रकाशित उपलब्ध प्रकाशन

वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	मूल्य 40)	दयानन्द और विवेकानन्द	मूल्य 15)
यज्ञमय जीवन	मूल्य 30)	बाल मनुस्मृति	मूल्य 12)
मील का पत्थर	मूल्य 20)	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	मूल्य 12)
भ्रांति दर्शन	मूल्य 20)	ओंकार उपासना	मूल्य 12)
चार मित्रों की बातें	मूल्य 20)	दादी पोती की बातें	मूल्य 10)
भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	मूल्य 20)	शुद्ध हनुमच्चरित	मूल्य 60)
शुद्ध रामायण (सजिल्द)	मूल्य 220)	शुद्ध रामायण (अजिल्द)	मूल्य 170)

उद्देश्य की एकता

-पं० माधवराव सप्रे

“एकै साधे सब सधै सब साधे सब जाय।
जो गहि सेवै मूल को फूलै फलै अघाय॥”

वर्तमान समय में किसी काम में यश प्राप्त कर लेना कोई सहज काम नहीं है। आजकल हमारे चारों ओर ऐसी बहुत सी नई-नई बातें उपस्थित हो गई हैं जो हमारा ध्यान अपनी ओर आप ही आप खींचा करती हैं। हमारा मन इन सब बातों को जानने, सुनने और देखने के लिए आप ही आप ललचाता रहता है। किसी मनुष्य को व्यापार, कलाकुशलता या उद्योग-धन्ये में सफल होते देख हम भी व्यापारी बनना चाहते हैं। जब हम किसी मनुष्य की शारीरिक शक्ति के अद्भुत प्रयोगों को देखते हैं तब हम प्रोफेसर राममूर्ति का अनुकरण करना चाहते हैं। जब हम किसी मनुष्य की बुद्धि का प्रशंसनीय प्रभाव देखते हैं तब हमारा मन आप ही आप उसकी नकल करने की इच्छा करने लगता है। किसी बड़े वकील, बारिस्टर, डाक्टर, इंजीनियर आदि को देखकर उसी के समान जीवन व्यतीत करने की इच्छा सैकड़ों विद्यार्थियों के मन में आप ही आप उत्पन्न हुआ करती है। किसी वक्ता और उपदेशक की वक्तृता सुनकर, किसी कवि की कविता पढ़कर और किसी लेखक का ग्रन्थ देखकर यदि हमारे मन में, अनुक्रम से वक्ता, कवि और ग्रन्थकार बनने की इच्छा हो तो आश्चर्य की बात नहीं है। सारांश यह है कि जिधर हम देखते हैं उधर ही हमारा मन आकर्षित हो जाता है और अन्य लोगों की सफलता को देखकर जी ललचाने लगता है। यह वर्णन काल्पनिक नहीं। प्रायः सब विद्यार्थी, और बड़ी उमर के कुछ मनुष्य भी, इस मानसिक चंचलता के विषय में, स्वयं अपने अनुभव से, गवाही दे सकते हैं। एक बार विद्यार्थी अपने मन में कहता है कि मैं किसी कालेज में अध्यापक का काम करके अपने देश के युवकों को उपयोगी होने की शिक्षा दूँगा। दूसरी बार, वह कहता है कि मैं अपने देश की आर्थिक दशा में सुधार करके सब लोगों को सम्पत्तिमान् और सुखी बनाने का यत्न करूँगा। परन्तु जो मनुष्य इस जमाने में रहकर ध्यानपूर्वक अपनी उन्नति का उपाय सोचेगा उसे यह बात अवश्य ही जँच जायगी कि अनेक उद्देश्यों का एक साथ पूरा होना असम्भव है।

आजकल जीवन-कलह की तीव्रता बहुत बढ़ गई है। यदि हम प्रत्येक चमकीली और भड़कीली वस्तु के पीछे अपने मन को भटकने देंगे तो अंत में हानि उठानी होगी। यदि हम अपने एक मन को अनेक कामों में एक साथ ही बाँट देंगे तो “न इधर के हुए न उधर के” वाली कहावत चरितार्थ हुए बिना न रहेगी। यह जमाना खास या विशेष काम करने वालों का है, साधारण जनों का नहीं। जो मनुष्य किसी एक काम को हाथ में लेकर एकाग्र चित्त से उसी को पूरा करेगा वही इस जीवन-संग्राम में विजय-प्राप्ति का अधिकारी हो सकता है। विचार करने की बात है कि जिस मनुष्य का तन, मन, धन समय-समय पर

उत्पन्न होने वाली अनेक इच्छाओं के पूर्ण करने में लगा हुआ है उस मनुष्य की कार्यसिद्धि में, तथा एक दूसरे मनुष्य की एकमात्र निश्चित इच्छा के पूर्ण होने में, कितना अन्तर है। मतलब यह है कि यदि हम सफलतापूर्वक अपना जीवन व्यतीत करना चाहते हैं तो हम को इस बात का निश्चय कर लेना चाहिए कि इस संसार में हमारा विशेष उद्देश्य क्या है। जब यह उद्देश्य एक बार निश्चित हो जाय तब उसी पर सदा आरुढ़ रहना चाहिए।

इसमें सन्देह नहीं कि हमारे देश की वर्तमान दशा के अनुसार ऐसे बहुत से अच्छे काम हैं जो उद्देश्य के विषय में सावधान रहने से, सरलता से किये जा सकते हैं। कोई शिक्षा के द्वारा अपने देश-भाईयों को शिक्षित कर सकता है; कोई सामाजिक विकास के सिद्धान्तों के अनुसार अपने समाज की उन्नति का यत्न कर सकता है; कोई विज्ञान की सहायता से कृषि, व्यापार, कला-कौशल आदि में बहुत कुछ सुधार कर सकता है; कोई राजनीति सीखकर अपने देश की भलाई कर सकता है और कोई अपने धर्म के सनातन-तत्त्वों के आधार पर, सुख और शान्ति से, जीवन व्यतीत करने का मार्ग दिखा सकता है। यह कहना कठिन ही नहीं, किन्तु असम्भव सा जान पड़ता है कि इन सब उपयोगी कामों में से अमुक एक दूसरे से अधिक अच्छा है। परन्तु प्रायः लोग ऐसे कामों में लग जाते हैं जो उनकी स्वाभाविक अवस्था की प्रतिकूलता के कारण उनसे हो ही नहीं सकते। ऐसे कामों को करने में परिश्रम वृथा जाता है। उसी काम को हाथ में लेना चाहिए जो अपनी स्वाभाविक अवस्था के अनुकूल हो- जिसके करने की कुछ स्वाभाविक योग्यता हममें हो। आसमान से तारे उतारने की कोशिश में रहना व्यर्थ है। कार्य के आरम्भ ही में जब अपने उद्देश्य को निश्चित करने का समय हो तभी खूब सोच विचार कर लेना चाहिए, और जब कभी एक काम में लग चुके तब उसे पूरा ही करके छोड़ना चाहिए। जब तक कार्य या उद्देश्य के सफल होने की कुछ भी सन्धि और सम्भावना है, और जब तक वह कार्य अनुपयोगी प्रतीत नहीं होता तब तक, उसे विफल मनोरथ होने पर भी, बार-बार करते ही रहना चाहिए। इस बात का स्मरण सदा बना रहे कि करना धरना तो कुछ भी नहीं, परन्तु सभी कामों में हाथ लगाने से, कुछ भी लाभ नहीं होगा।

प्रायः अधिकांश लोग अपने मन की चंचलता के कारण किसी एक कार्य में या उद्देश्य में स्थिर नहीं हो सकते। ऐसे लोगों को पछताने के सिवा और कुछ लाभ नहीं हो सकता। इस विषय में एक छोटीसी कहानी है जिससे हमारे विद्यार्थी कुछ लाभदायक शिक्षा पा सकते हैं। “एक समय की बात है। दो आदमी (उनमें से एक हिन्दू था दूसरा मुसलमान) आपस में झगड़ने लगे। मुसलमान राम को झूठा बतलाता था और हिन्दू रहीम को। उनका निबटेरा होना मुश्किल था। इसलिए उन्होंने एक सभ्य मनुष्य को मध्यस्थ नियत किया। मध्यस्थ ने यह कहकर झगड़ा टालना चाहा कि हिन्दू के लिए राम और मुसलमान के लिए रहीम सच है। परन्तु वे दोनों आदमी हठ करके एक दूसरे को झूठा कहने लगे। तब उस मध्यस्थ ने कहा- “तुम दोनों एक पर्वत के ऊँचे शिखर से अपने-अपने इष्टदेव का नाम लेकर नीचे कूद पड़ो, जो गिरकर मर जायगा वही झूठा होगा।” हिन्दू “राम” कहकर कूद पड़ा, एक पेड़ को पकड़कर लटक गया। मुसलमान

भी “रहीम” कहता हुआ पर्वत की चोटी से कूद पड़ा। उसने भी एक पेड़ से लटककर अपने प्राण बचा लिये। कहते हैं कि अचानक वहाँ आकाश की ओर से एक दिव्य विमान नीचे उतरा और उन दोनों को स्वर्ग की ओर ले गया। तमाशा देखने वालों में से एक का जी ललचाया। वह सोचने लगा कि अकेले “राम” तथा अकेले “रहीम” ने ही जब इन लोगों को ऐसे ऊँचे पद पर पहुँचा दिया तब मैं राम और रहीम दोनों कहकर इनसे भी अधिक योग्यता पा जाऊँगा। बस, यह सोचकर वह पर्वत के शिखर पर चढ़ गया और नीचे कूद पड़ा। वह अस्थिर स्वभाव का आदमी था। नीचे गिरते समय शून्य-वायुमण्डल में वह सोचने लगा कि किस झाड़ की शाखा को पकड़ना चाहिए और किस नाम-राम या रहीम-का उच्चारण करना चाहिए। कभी वह राम को पुकारता, कभी रहीम को। कभी वह एक वृक्ष का सहारा लेता, कभी दूसरे का। इस प्रकार एक उद्देश्य से दूसरे की ओर भटकता हुआ वह धड़ाम से नीचे आ गिरा। उसकी हड्डियाँ चूर-चूर हो गई।” यही दशा उन लोगों की होती है जो किसी एक उद्देश्य पर स्थिर नहीं रहते।

ज्ञान के विषयों की ऐसी अद्भुत वृद्धि हो रही है कि अब इस बात की कोई संभावना नहीं दीख पड़ती कि एक आदमी सभी विषयों का पूर्ण ज्ञान रख सके। मनुष्य का जीवन-काल बहुत ही अल्प है। संसार में सर्वांग सत्यपूर्ण ज्ञान की दिनोंदिन उन्नति हो रही है। यही देखकर किसी कवि ने कहा है-

“शास्त्रं ह्यनन्तं बहुलाश्च विद्याः अल्पश्च कालो बहुविघ्नता च।

यत्सारभूतं तदुपासनीयं हंसो यथा क्षीरमिहाम्बुमध्यात्॥”

जब किसी एक ही विषय का पूर्ण ज्ञाता होना और एक ही विषय में दक्षता प्राप्त करना कठिन है तब अनेक विषयों पर ध्यान देकर अपने तन, मन और धन को नष्ट कर देने से क्या लाभ होगा? विद्वानों के मत अनुसार वर्तमान समय का झुकाव विशेषता की ओर अधिकाधिक बढ़ता जाता है The Present is an age of specialization. इसमें सन्देह नहीं कि हम आजकल की सब बातों को पूरी तरह से जान नहीं सकते। इसलिए हमको अपनी स्वाभाविक रुचि के अनुसार किसी एक ही विषय की ओर दृढ़ संकल्प से झुक पड़ना चाहिए। हाँ, ऐसे भी एकाध दुर्लभ मनुष्य संसार में रहते हैं जो एक ही शरीर और एक ही मस्तिष्क से बहुजन-साध्य काम कर सकते हैं। वे चाहें तो एक दम चट्टानों से फूल की सेज पर अथवा राजनीति से हँसी दिल्ली में आ सकते हैं। वे चाहें तो इतिहासकार हो सकते हैं, धार्मिक ग्रन्थ लिख सकते हैं, राजनीति में निपुण हो सकते हैं और सृष्टि तथा जीवन के तत्वों का अनुसंधान भी कर सकते हैं। सारांश, वे जो चाहें कर सकते हैं। उनके लिए कुछ भी असाध्य नहीं। उनमें विलक्षण शक्ति होती है। वही यथार्थ में प्रतिभासम्पन्न कहाते हैं। परन्तु सोचना चाहिए कि संसार में ऐसे कितने प्रतिभाशाली पुरुष मिल सकते हैं? और, यह भी सोचना चाहिए कि क्या वे उद्देश्य की एकता के बिना और परिश्रम किये बिना ही प्रतिभाशाली हो गये? “प्रतिभा” परिश्रम करने की अपरिमित शक्ति ही को कहते हैं। प्रतिभाशाली पुरुषों के कामों को देखकर यह नहीं समझना चाहिए कि हम भी बिना प्रयत्न के आप ही आप उनके समान सब कुछ एक दम कर सकेंगे। किसी ने सच कहा है-“आजकल बुद्धिमानी, अज्ञात

अथवा धर्मज्ञात बातों को छोड़ देने में ही है, न कि उनके पीछे समय खोने में।”

ऊपर कहा जा चुका है कि हमारा उद्देश्य एक ही हो और उसी की सफलता के लिए हम अपनी सब शक्तियों को लगा दें। अब यहाँ पर यह जानना आवश्यक है कि हमारे जीवन का वह विशिष्ट उद्देश्य कैसा और कौन सा हो। इस विषय की विस्तृत चर्चा किसी दूसरे लेख में की जायगी। यहाँ सिर्फ इतना ही लिख देना उचित जान पड़ता है कि हम बचपन से अपने अंतःकरण की स्वाभाविक शक्ति और झुकाव को देखें और इस बात का निश्चय करें कि उनकी प्रवृत्ति किस ओर अधिक है। इस स्वाभाविक शक्ति और झुकाव ही का विकास, विद्यार्थी-दशा में, शिक्षा की सहायता से किया जाना चाहिए और यही हमारे जीवन का मुख्य कर्तव्य होना चाहिए। हमें उचित है कि हम नित्य इसी मार्ग से चलना सीखें, इसी मार्ग को कण्टकहीन बनावें और इसी का अनुसन्धान किया करें। इस प्राकृतिक मार्ग पर अवलम्बित रहने से-अन्तःकरण की किसी एक विशेष शक्ति को पूर्णावस्था में पहुँचाने का प्रयत्न करते रहने से-हमारे जीवन की सफलता अवश्य हो जायगी।

किसी मनुष्य में कैसी भी तीव्र बुद्धि क्यों न हो, यदि वह उसे सब दिशाओं की ओर गति देगा तो उसकी गति अवश्य ही मन्द हो जायगी। कोई-कोई मनुष्य एक समय में एक ही काम करके भी सफलमनोरथ नहीं होते। इसका दोष वे अपने भाग्य के मत्वे मँढ़ दिया करते हैं। परन्तु यह उनकी भूल है। सच बात तो यह है कि या तो वे उचित रीति से कार्य का आरम्भ नहीं करते या वे अपनी इष्टसिद्धि में एक बार थोड़े समय तक भगीरथ-प्रयत्न करके फिर शेष कार्य को आलस्य और अनुत्साह से किया करते हैं। यदि किसी उद्देश्य को पूर्ण करना है तो पहले हमें यह देख लेना चाहिए कि हममें उसके सम्पादन की योग्यता है या नहीं। यदि नहीं है तो सबसे पहले योग्यता प्राप्त करने का यत्न करना चाहिए। यह काम विद्यार्थी-अवस्था में सरलता से हो सकता है। यहाँ पर आधुनिक शिक्षापद्धति के विषय में भी एक बात लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। यह पद्धति हमें यह सिखलाती है कि “तुम किसी भी विषय में अनभिज्ञ न रहो।” परन्तु यह सिद्धान्त सर्वथा दोषपूर्ण है। यदि हमें किसी एक विषय में पूर्णता प्राप्त करनी है तो अन्य विषयों की ओर ध्यान नहीं देना चाहिए। अपने इच्छित विषय के ही अनुसन्धान में मन को एकाग्र करके अपनी सब आन्तरिक शक्तियों को उपयोग में लाना चाहिए। नहीं तो हम किसी भी विषय में पूर्णता नहीं प्राप्त कर सकेंगे। हाँ, हमें बहुत सी बातों का साधारण ज्ञान होना आवश्यक है, और यह बहुत सुगमता से हो भी जाता है। इसके लिए विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता। तात्पर्य यह है कि उद्देश्य की एकता पर ही सफलता अवलम्बित है। प्रकृति के कार्यों से भी हमें इसी बात की शिक्षा मिलती है। देखो, जब भाप शून्य आकाश में इधर-उधर बिखरी रहती है तब वह किसी काम की नहीं रहती, तब उसके समान अनुपयोगी वस्तु कुछ भी नहीं हो सकती। परन्तु वही भाप जब एकत्रित की जाती है और किसी यन्त्र में भर दी जाती है तब वह बड़ी-बड़ी चट्टानों को भी फोड़ सकती है।

एक ही विषय की ओर ध्यान दो, एक ही विषय को पूर्णता में पहुँचाओ। इसका यह मतलब नहीं

है कि "कुत्ता और बिल्ली" का भी भेद न पहचान सको। उद्देश्य की एकता हमें यह कभी नहीं सिखाती कि तुम नैपोलियन बनकर दस और पाँच को जोड़ तक न सको। जो लोग यह समझते हैं कि उद्देश्य की एकता हमें एकपक्षीय होना सिखाती है वे भारी भूल करते हैं। अपने निश्चित उद्देश्य की सफलता के लिए आवश्यक बातों का ज्ञान प्राप्त करना कभी हानिकारक नहीं हो सकता। परन्तु अपने केन्द्रभाव अर्थात् उद्देश्य की एकता को अनेकता का रूप देने का यत्न कभी नहीं करना चाहिए।

इसमें कुछ भी मतभेद नहीं हो सकता कि हमारा उद्देश्य बहुत ऊँचे दर्जे का होना चाहिए। एक कहावत है, जिसका अर्थ यह है कि जो मनुष्य आकाश को लक्ष्य करके निशाना लगावेगा वह उस आदमी से अधिक ऊँचा निशाना लगा सकेगा जो केवल किसी वृक्ष पर लक्ष्य करता हो। इस बात पर हमेशा ध्यान बना रहे कि तीर से दो निशाने कभी जम नहीं सकते। इस संसार की जीवन-यात्रा को जो सफल करना चाहता है उसे "एको देवः केशवो वा शिवो वा" इस मन्त्र का व्यावहारिक जप नित्य करना पड़ेगा। जीवन-संग्राम में विजय-प्राप्ति के लिए कवि ने यही उपाय कहा है-

"One thing at a time and that done well,

Is the way of happiness as many can tell."

सच है, जिसने उद्देश्य की एकता पर उचित ध्यान दिया है वही इस संसार में सुख और शान्ति का अनुभव प्राप्त कर सकता है। ❀❀❀

महापुरुषों की जयन्ती

अग्रसेन	1 अक्टूबर
महात्मा गांधी	2 अक्टूबर
लालबहादुर शास्त्री	2 अक्टूबर
रानी दुर्गावती	5 अक्टूबर
जयप्रकाश नारायण	11 अक्टूबर
महर्षि वाल्मीकि	16 अक्टूबर
सूर्यसेन	18 अक्टूबर
धनवन्तरि	27 अक्टूबर
भगिनी निवेदिता	28 अक्टूबर
श्यामजी कृष्ण वर्मा	30 अक्टूबर
डॉ० होमीभाभा	30 अक्टूबर
सरदार बल्लभभाई पटेल	31 अक्टूबर

महापुरुषों की पुण्यतिथि

गुरु गोविन्दसिंह	7 अक्टूबर
जयप्रकाश नारायण	8 अक्टूबर
राममनोहर लोहिया	12 अक्टूबर
विठ्ठलभाई पटेल	22 अक्टूबर
इन्दिरा गांधी	31 अक्टूबर
8 अक्टूबर	वायु सेना
10 अक्टूबर	डाकतार दिवस
11 अक्टूबर	विजयदशमी
14 अक्टूबर	विश्व मानक दिवस
14 अक्टूबर	न्याय दिवस
29 अक्टूबर	दीपदान
30 अक्टूबर	दीपावली
31 अक्टूबर	संकल्प दिवस
31 अक्टूबर	आजाद हिन्द फौज स्थापना दिवस

निराशाग्रस्त-निर्जीव और निरर्थक जीवन

निराशा का दूसरा नाम है-भय, बेचैनी और अशान्ति। भविष्य को अन्धकार में देखना और प्रस्तुत विपत्ति को अगले दिनों और अधिक बढ़ती हुई सोचना एवं ऐसा स्वविनिमित्त संकट है जिसके रहते, सुखद परिस्थितियाँ प्राप्त कर सकना कदाचित ही सम्भव हो सके।

सोचने का एक तरीका यह है कि अपना गिलास आधा खाली है और अभावग्रस्त स्थिति सामने खड़ी है। सोचने का दूसरा तरीका यह है कि अपना आधा गिलास भरा है जबकि सहस्रों पात्र बिना एक बूँद पानी के खाली पड़े हैं। अभावों को कठिनाइयों को सोचते रहना एक प्रकार की मानसिक दरिद्रता है।

जो रात्रि के अन्धकार को ही शाश्वत मान बैठा और जिसे यह विश्वास नहीं कि कुछ समय बाद अरुणोदय भी हो सकता है उसे बौद्धिक क्षेत्र का नास्तिक कहना चाहिए। दार्शनिक नास्तिक वे हैं जो सृष्टि की अव्यवस्थाओं को तलाश करके यह सोचते हैं कि दुनिया बिना किसी योजना व्यवस्था या सत्ता के बनी है। उन्हें सूर्य और चन्द्रमा का उदय-अस्त बीज और वृक्ष का अनवरत सम्बन्ध जैसे पग-पग पर प्रस्तुत व्यवस्था क्रम सूझते ही नहीं। ईश्वर का अस्तित्व और कर्तव्य उनकी दृष्टि से ओझल ही रहता है। ठीक इसी प्रकार की बौद्धिक नास्तिकता वह है जिनमें जीवन के ऊपर विपत्तियों और असफलताओं की काली घटाएँ ही छाई दीखती हैं। उज्ज्वल भविष्य के अरुणोदय पर जिन्हें विश्वास ही नहीं जमता।

जीवन का पौधा आशा के जल से सींचे जाने पर ही बढ़ता और फलता-फूलता है। निराशा के तुपार से उसका अस्तित्व ही संकट में पड़ जाता है। उज्ज्वल भविष्य के सपने देखते रहने वाला आशावादी ही उनके लिये ताना-बाना बुनता है। प्रयत्न करता है-साधन जुटता है और अन्ततः सफल होता है। यह सही है कि कई बार आशावादी स्वप्न टूटते भी हैं और गलत भी साबित होते हैं पर साथ यह भी सत्य है कि उजले सपनों का आनन्द कभी झूठा नहीं होता। वह प्रकाश तब तक अन्तर में बना रहेगा जब तक ऐसी गुदगुदी बनी रहेगी जो मनोरथ पूरा न होने पर भी उस उपलब्धि जैसा ही उल्लास बनाये रहे। यह उज्ज्वल सपनों का आनन्द जब अभ्यास में आता है तब इतना मधुर होता है कि उसे बनाये रखने के लिए कठिन से कठिन कर गुजरने की हिम्मत की जा सके।

मुसीबतें और असफलताएँ सिर्फ यह जानने के लिये आती हैं कि व्यक्ति किसी हद तक साहस सँजोये रह सकता है जिन्होंने हर कठिनाई को एक चुनौती माना उसके लिए इस संसार में कोई अवरोध नहीं, छात्रों को आये दिन अध्यापक के पूछे प्रश्नों को हल करना पड़ता है। तभी उसे उत्तीर्ण होने की प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। अवरोध एक प्रकार का अध्यापक है जो प्रतिभा को विकसित करने के लिये उत्तेजना प्रदान करता है और चिरस्मरणीय सफलता वरण कर सकने की क्षमता से सुसम्पन्न बनाता है। जो कठिनाई के दिनों में आशावादी रह सका, समझना चाहिए पुरुषार्थी महामानवों की पंक्ति में उसी का

अभिषेक किया जाने वाला है।

तपोभूमि मासिक के ग्राहक महानुभावों से विनम्र निवेदन

‘तपोभूमि’ मासिक के पाठकों से निवेदन है कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क चालू वर्ष या पिछले वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा है। वे शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। वार्षिक शुल्क 150/- एक सौ पचास रुपये तथा पन्द्रह वर्ष हेतु 1500/- एक हजार पाँच सौ रुपये भेजकर पत्रिका का लाभ उठावें।

-धनराशि भेजने हेतु बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या-

‘तपोभूमि’ मासिक पत्रिका के सभी पाठकों को दीपावली की हार्दिक शुभकामनायें

अपनी कमाई-सदा काम आई

सम्राट जनमेजय प्रति माह कुछ समय राज्य में यह देखने के लिए भ्रमण किया करते थे कि उनकी प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं। विकास की जो योजनायें क्रियान्वित की जाती हैं, उनका परिपालन होता है या नहीं? उनका लाभ नागरिकों को मिलता है या नहीं।

वे एक गाँव से गुजर रहे थे। छिपे वेश में थे, इसलिए कोई पहिचान न सका। एक जगह लड़के खेल खेल रहे थे। एक लड़का उनमें शासक बनकर बैठा था। सभासद बने लड़के सामने बैठे थे। शासक का अभिनय करने वाला लड़का जिसका नाम कुलेश था, खड़ा सभासदों को व्याख्यान दे रहा था-‘सभासदो! जिस राज्य के कर्मचारीगण वैभव विलास में डूबे रहते हैं, उनका राजा कितना ही नेक और प्रजावत्सल क्यों न हो उस राज्य की प्रजा सुखी नहीं रहती। मैं चाहता हूँ जो भूल जनमेजय के राज्याधिकारी कर रहे हैं वह आप लोग न करें, ताकि मेरी प्रजा असन्तुष्ट न हो। तुम सबको वैभव विलास का जीवन छोड़कर आदर्श जीवन जीना चाहिए। जो ऐसा नहीं कर सकता वह अभी शासन सेवा से अलग हो जाये।’

सभासद तो अलग न हुए पर बालक की यह प्रतिभा उसे ही वहाँ से अवश्य खींच ले गई। जनमेजय उससे बहुत प्रभावित हुए और उसे ले जाकर महामंत्री बना दिया। कुलेश युवक था तो भी वह बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से राज्य कार्यों में सहयोग देने लगा। सामान्य प्रजा से उठकर जब वह महामंत्री बनने चला था, तब उसके पास एक कुदाली, लाठी और एक उत्तरीय वस्त्र (अंगोछा) के अतिरिक्त कुछ नहीं था, वह इन्हें अपने साथ ही ले गया था।

उसके प्रधान मन्त्रित्व काल में अन्य मन्त्रियों, सामन्तों एवं राज्य कर्मचारियों के लिए एक आचार संहिता बनाई गई जिसके अनुसार प्रत्येक पदाधिकारी को दस घंटे अनिवार्य रूप से कार्य करना पड़ता था। अतिरिक्त आय के कोष बन्द कर दिये गये। इससे बचा बहुत सा धन प्रजा की भलाई में लगने लगा। सारी प्रजा में खुशहाली छा गई। जनमेजय कुलेश के आदर्श प्रबन्ध से बड़े प्रसन्न हुए।

पर शेष सभासद जिनकी आय व विलासितापूर्ण जीवन को बट्टा लगा था महामंत्री कुलेश से जल उठे और उसे अपदस्थ करने का षड्यंत्र रचने लगे।

उन्हें किसी तरह पता चल गया कि महामंत्री के निवास स्थान में एक कक्ष ऐसा भी है जहाँ वह किसी भी व्यक्ति को जाने नहीं देता। जब वह दिन भर के काम से लौटता है तब स्वयं ही कुछ देर उसमें एकान्तवास करता है।

सभासदों ने इस रहस्य को लेकर ही जनमेजय के कान भर दिये कि कुलेश ने बहुत सी सम्पत्ति अवैध एकत्रित करली है। महाराज उनके कहने में आ गये। अतएव जाँच का निश्चय कर एक दिन वे स्वयं सैनिकों सहित कुलेश के निवास पर पहुंचे। सब ओर घूमकर देखा पर महाराज को सम्पत्ति के नाम पर कुछ

कार्लाइल की क्षमा शीलता

कार्लाइल अंग्रेजी साहित्य के प्रसिद्ध लेखक हो चुके हैं। इन्होंने फ्रांस की राज्य क्रांति पर ग्रन्थ लिखा और उसकी पांडुलिपि अपने दोस्त को देखने को दी। एक दिन जब वह पांडुलिपि वापस माँगी तो उसने अपनी पत्नी से उसे लौटाने को कहा। खोजने पर वह कहीं न मिली। काफी देर तक पूछताछ करने के बाद मालूम हुआ कि एक नौकरानी ने मेज के नीचे उसे पड़ा हुआ देखा और यह समझा कि यह रद्दी कागज का गट्ठा होगा। उसे रसोईघर के हवाले कर दिया वह जलकर राख हो गया।

कार्लाइल को इसका कितना दुःख हुआ होगा पर उसने बिना झुंझलाये उसे क्षमा कर दिया। उसने पुनः वह पुस्तक लिखी।

X

X

X

क्षमा मनुष्य के हृदय का सबसे बड़ा गुण है। जिस प्रकार पूर्णिमा का चन्द्रमा निष्कलंक होता है, उसी प्रकार क्षमा के गुण का अंकुर उसी हृदय में पैदा होता है, जो पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति निष्कलंकित होता है। जिस किसी हृदय में क्षमा का गुण पैदा होता है। उनमें बैर, विरोध, ईर्ष्या, हिंसा, प्रतिहिंसा आदि कोई विकार उत्पन्न नहीं होता, सचमुच चन्द्रमा की भाँति धवल होता है।

वे क्षुद्र और अहंकारी जन बड़े अभागे होते हैं जो क्रोध और बदले की भावना से पराभूत होकर क्षमा करने के दिव्यानन्द से वंचित रहते हैं। अतः हमें इस दैवी गुण को अपने जीवन में अवश्य ही धारण करना चाहिये। ❀❀❀

पृष्ठ संख्या 28 का शेष—

भी नहीं दीखा। तभी उनकी दृष्टि उस कमरे में गई। वे समझे कुलेश निश्चय ही अपनी कमाई इसमें रखता है।

महाराज ने पूछा—‘कुलेश! तुम इस कक्ष में एकान्त में क्या किया करते थे?’ इनकी पूजा महाराज! उसने उत्तर दिया। कुदाली मुझे सदैव परिश्रम की प्रेरणा देती थी और लाठी स्वजनों की सुरक्षा की। उत्तरीय वस्त्र की पूजा मैं इसलिए करता हूँ कि घर हो या बाहर यही बिछौना मेरे लिये पर्याप्त है। यह कहकर कुलेश ने तीनों वस्तुएँ उठाली और वहाँ से फिर उसी ग्रामीण जीवन में चला आया।

महाराज! जनमेजय सभासदों के षड्यन्त्र से दुःखी होकर हाथ मलते रह गये। यही दुःख अब भी बना हुआ है। वह तब दूर हो जब कुलेश जैसे आदर्श राज्य कर्मचारी देश में उत्पन्न हों। ❀❀❀

**मुख मोड़ा कर्तव्य से, करता है कुछ और।
शंकर लेखा आयु का, दूषित है सब गैर॥**

स्वास्थ्य, सफलता और शक्ति प्राप्त करने का गुप्त रहस्य

लेखक: बाबू दयाचन्द्र गोयलीय

जो मनुष्य प्रतिदिन अपने हृदय में उत्कृष्ट भलाई और नेकी को स्थान देने का उद्योग करते हैं, वे निश्चय से वास्तविक सुख, स्वास्थ्य और सम्पत्ति को प्राप्त करते हैं। भलाई और नेकी बराबर कोई रक्षा नहीं है। भलाई से मेरा तात्पर्य केवल यह नहीं है कि सदाचार के नियमों का वाह्य में पालन किया जाए, किन्तु यह अभिप्राय है कि हमारे विचार विशुद्ध और पवित्र हों, हमारी आकांक्षाएँ उच्च हों, हमारा प्रेम निःस्वार्थ हो और हममें व्यर्थ का थोथा अभिमान न हो। सदा सद्दिचारों में जीवन व्यतीत करना मानो अपने चहुँ ओर शक्ति और प्रेम की वायु बहना है, जिसका उन समस्त मनुष्यों पर प्रभाव पड़ता है कि जो उस वायु में श्वास लेते हैं।

जैसे सूर्य के प्रकाश से निर्मूल अन्धकार का नाश हो जाता है, उसी प्रकार विशुद्ध हृदय और दृढ़ विश्वासी मनुष्य के प्रबल विचारों की सर्वव्यापी किरणों के आगे बुराई की सम्पूर्ण निर्बल शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और उनका कहीं चिन्ह भी नहीं रहता।

जहाँ कहीं दृढ़ विश्वास, सम्यक् श्रद्धा और पवित्रता का सद्भाव होता है, वहाँ पर शक्ति, स्वास्थ्य और सफलता तीनों मौजूद होती है। ऐसी अवस्था में रोग, आपदा और असफलता कदापि नहीं ठहर सकती, कारण कि उनकी पुष्टि के लिए वहाँ कोई वस्तु नहीं होती।

शारीरिक अवस्थाएँ भी अधिकतर मानसिक अवस्थाओं पर निर्धारित होती हैं। विज्ञान-शास्त्र भी इस सिद्धान्त को मानता जाता है। जो लोग मन और आत्मा को भी नहीं मानते थे और कहते थे कि मनुष्य केवल शरीर पर बना हुआ है, अर्थात् शरीर के अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है, उनका सिद्धान्त भी अब पुराना हो चला है और वे इस सिद्धान्त को छोड़ते जाते हैं। अब उनका यह विश्वास हो चला है कि मनुष्य अपने शरीर से उच्चतर है, अर्थात् मनुष्य में शरीर से बढ़कर भी कोई वस्तु है और उसका शरीर वही है जो वह अपनी मानसिक शक्ति से बनाता है। दूसरे शब्दों में जो शरीर पर मनुष्य के मानसिक विचारों का भारी प्रभाव पड़ता है। अब लोग इस विश्वास को छोड़ते जाते हैं कि अमुक मनुष्य को अजीर्ण है, इस कारण वह उदास और अप्रसन्न रहता है किन्तु इसके विपरीत यह विश्वास करते जाते हैं कि अमुक मनुष्य को इस कारण से अजीर्ण है कि उदास और अप्रसन्न रहता है और भविष्य में एक ऐसा समय आने वाला है कि जब सब को यह बात ज्ञात हो जायगी कि जितने भी रोग हैं, उन सबका कारण मनुष्य का मन है, अर्थात् भिन्न-भिन्न मानसिक अवस्थाओं के कारण ही मनुष्य भिन्न-भिन्न रोगों में ग्रसित रहते हैं।

दुनिया में ऐसी कोई बुराई या बीमारी नहीं है कि जो मन से पैदा न हुई हो। हर एक बुराई और बीमारी का कारण मन है। रोग, शोक, दुःख और संताप का सम्बन्ध सांसारिक नियमों से नहीं है और न

उनका पृथक् अस्तित्व ही है। वे सब इस कारण से पैदा होते हैं कि हम पदार्थों के वास्तविक सम्बन्ध से अपरिचित हैं।

कहा जाता है कि भारतवर्ष में किसी समय में ऐसे तत्वज्ञानी रहा करते थे कि जो ऐसी सादगी और पवित्रता का जीवन व्यतीत करते थे कि उसके कारण उनकी आयु साधारण तथा डेढ़ सौ वर्ष की हुआ करती थी और बीमार पड़ना उनके लिये असंभव और अपमान का कारण समझा जाता था, कारण कि उससे ज्ञात होता था कि उन्होंने प्राकृतिक नियमों की अवज्ञा की है।

जितनी जल्दी हमें इस बात का अनुभव और ज्ञान हो जाएगा कि बीमारी इस कारण से नहीं आई है कि ईश्वर ने क्रोध में आकर हमको अनुचित दण्ड दिया है, उतनी ही जल्दी हम स्वास्थ्य के पथ पर लग जायेंगे। बीमारी उन्हीं लोगों को आती है जो बीमारी को अपनी ओर आकर्षित करते हैं और जिनके मन और शरीर बीमारी को ग्रहण करते हैं। उन लोगों से बीमारी कोसों दूर भागती है जिनका दृढ़ पवित्र और प्रबल विचार स्वास्थ्यप्रद अवस्था उत्पन्न करता है।

यदि तुम क्रोध मान, माया लोभ, ईर्ष्या, द्वेष अथवा अन्य किसी वासना के आधीन रहते हो और फिर इस बात की आशा करते हो कि तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा रहे, तो तुम निश्चय से असंभव बात की आशा करते हो। ऐसा कदापि नहीं हो सकता, कारण कि तुम तो निरंतर अपने मन में बीमारी के बीज बो रहे हो। बुद्धिमान मनुष्य ऐसी अप्रिय मानसिक अवस्थाएँ गंदे नाले और उस मकान से भी अधिक भयंकर है कि जिसमें प्लेग या हैजा फैल रहा हो।

यदि तुम शारीरिक व्याधियों से बचे रहना और पूर्ण रूप से स्वास्थ्य लाभ करना चाहते हो, तो अपने मन को निश्चित रखो और अपने विचारों को एक ओर लगाओ। हर्ष और आनन्द के विचार सोचो, प्रेम और वात्सल्य के भाव अपने मन में लाओ और नेकनियती का अपनी नस-नस में असर होने दो। फिर तुम्हें किसी औषधि की जरूरत नहीं रहेगी। अपने मन से ईर्ष्या, द्वेष, भय, शंका, चिंता और स्वार्थ के विचारों को एकदम निकाल डालो, तुम्हारी अजीर्ण और मंदाग्नी आदि की तमाम शिकायतें तत्काल दूर हो जाएँगी, परन्तु यदि तुम अपनी हठ से इन दुर्वासनाओं को अपने मन से न निकालोगे तो फिर इस बात की शिकायत मत करना कि तुम्हारा शरीर व्याधियों में ग्रसित है।

हम एक कहानी सुनाते हैं। उससे आपको यह बात स्पष्ट प्रगट हो जाएगी कि मानसिक विचारों और वासनाओं का शारीरिक अवस्थाओं से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक मनुष्य किसी रोग में ग्रसित था, रोग सख्त था। उसने कई हकीमों का इलाज किया, परन्तु कुछ भी लाभ नहीं हुआ। तब वह ऐसे स्थानों पर गया जहाँ का जलवायु रोगनाशक समझा जाता था, परन्तु वहाँ जाने से भी उसे कुछ लाभ नहीं हुआ। उसका रोग ज्यों का त्यों बना रहा। एक रात को उसने यह स्वप्न देखा कि एक देव ने उसके पास आकर पूछा कि क्या तूने सर्व प्रकार के इलाज कर लिये? उसने उत्तर दिया, हाँ, मैंने सर्वप्रकार के इलाज कर लिये। इस पर देव ने कहा, अच्छा मेरे साथ आ, मैं तुझे पानी का एक चश्मा दिखाऊँगा जिसे तूने आज

तक नहीं देखा है। वह बेचारा उसके पीछे-पीछे हो लिया। देव उसे पानी के एक साफ निथरे चश्मे पर ले गया और बोला, ले इस पानी में डुबकी लगा। तेरा सारा रोग जाता रहेगा। यह कहकर देव अदृश्य हो गया। रोगी ने पानी में डुबकी लगाई और पानी से बाहर निकलते ही उसने देखा कि उसका सारा रोग जाता रहा। इसके साथ ही उसने चश्मे पर 'त्याग' शब्द को लिखा हुआ देखा। इतने में ही उसकी आँख खुल गई और जो स्वप्न उसने देखा था उसके पूरे-पूरे अर्थ उसकी समझ में आ गए। विचार करने से उसे मालूम हुआ कि वह अब तक एक पाप का भागी बन रहा है। उसी कारण से रोग ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। उसने अपने जी में पश्चात्ताप किया और तुरन्त प्रतिज्ञा ले ली कि मैं अब से इसका जीते जी त्याग करता हूँ। उसने वास्तव में अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया और उसी दिन से उसका रोग कम होने लगा, यहाँ तक कि थोड़े ही दिनों के बाद वह बिलकुल अच्छा हो गया।

बहुत से लोगों का यह विश्वास होता है कि अधिक कार्य करने से उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया है। ऐसी बहुत सी अवस्थाओं में प्रायः स्वास्थ्य इस कारण बिगड़ जाता है कि लोग अपनी मूर्खता से अपनी शक्ति को नष्ट कर देते हैं। यदि तुम अपने स्वास्थ्य को बनाए रखना चाहते हो तो तुम्हें शांतचित्त होकर काम करना चाहिये। चिंता करना, अथवा घबड़ा जाना, अथवा सदा बिंदी की चिंदी निकालना और व्यर्थ में काम को बढ़ा लेना स्वास्थ्य के लिए हानिकर है और रोग को स्वयमेव बुलाना है। काम चाहे शारीरिक हो चाहे मानसिक सदा उपयोगी और स्वास्थ्यप्रद होता है। जो मनुष्य भय और चिंता से मुक्त होकर और अपने मन को सर्व वस्तुओं से हटाकर केवल जो काम सामने है, उसकी ओर लगाता है, और जमकर शांति से काम करता है, वह उस मनुष्य की अपेक्षा जो सदा चिंतित रहता है केवल अधिक काम ही नहीं करेगा, किन्तु अपने स्वास्थ्य को भी सुरक्षित रख सकेगा। इसके विपरीत जो मनुष्य निरंतर भय और चिंता में ग्रसित रहता है उसका स्वास्थ्य शीघ्र ही बिगड़ जाता है।

स्वास्थ्य और सफलता दोनों में कार्य कारण का सम्बन्ध है। अर्थात् जिस मनुष्य का स्वास्थ्य अच्छा है, उसे अवश्य सफलता होगी, कारण कि इन दोनों बातों का विचार रूपी जगत् में पारस्परिक सम्बन्ध है और यह सम्बन्ध कदापि टूट नहीं सकता। जिस प्रकार मानसिक अवस्था के उत्तम होने से मनुष्य की शारीरिक अवस्था उत्तम होती है, उसी प्रकार मन के द्वारा मनुष्य अपने कार्यों में सफलता प्राप्त कर सकता है। अपने विचारों को उत्तम रूप से तरतीब दो, तुम्हारा जीवन भी उत्तम हो जायेगा। यदि तुम अपनी कषायों और वासनाओं की भयंकर लहरों पर शांति का तेज डालो अर्थात् शांति धारण करो, तो दुर्भाग्य और विपत्ति की आँधियाँ, चाहे वे कितने ही जोर से चलें, तुम्हारी आत्मिक नौका में जबकि वह जीवन रूपी समुद्र में चल रही हैं, किसी प्रकार की हल चल पैदा नहीं कर सकतीं, और यदि उस नौका का नाविक दृढ़ विश्वासी और प्रसन्न चित्त मनुष्य हो तो नौका सीधे वे खटके चली जाएगी और विपत्तियों से निकल कर अपने अभीष्ट स्थान पर सुरक्षित पहुँच सकेगी। परन्तु हाँ, यदि नाविक दृढ़ विश्वासी और प्रसन्नचित्त न हो, तो नौका का विपत्तियों से बचना कठिन है। विश्वास के बल से प्रत्येक

कार्य की पूर्ति हो सकती है। ईश्वर पर विश्वास रखना, ईश्वरीय नियम पर विश्वास करना, अपने कार्य पर विश्वास करना तथा अपनी शक्ति पर विश्वास करना, सफलता प्राप्त करने का गुर है। अब प्रश्न यह है कि विश्वास किसे कहते हैं। प्रत्येक दशा में अपने मन की सर्वोच्च भावनाओं से काम लेना, अपने शुद्ध अन्तःकरण पर श्रद्धा न करना और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये निर्भय होकर शांति से उद्योग करना और इस बात का निश्चय रखना कि भविष्य में हमारे प्रत्येक विचार और प्रत्येक कार्य का हमें बदला मिलेगा और दुनिया के नियमों में भूल नहीं हो सकती, जो कुछ हमारा है, उसका एक-एक कण हमें मिलेगा। इसी का नाम सच्चा विश्वास है। ऐसे विश्वास के बल से सर्व प्रकार के संदेह दूर हो जाते हैं, कठिनाइयों के पहाड़ चूर-चूर हो जाते हैं और सम्यक् सिद्धान्त युक्त आत्मा निःशंक चली जाती है। अतएव पाठकगण, प्रत्येक वस्तु को छोड़कर सबसे प्रथम इस निःशंक सिद्धान्त और अटल विश्वास को प्राप्त करने का उद्योग करो, कारण कि इस प्रकार का सिद्धान्त मनुष्य को सुख, सफलता और शक्ति के प्रदान करने में और उसके जीवन को सर्व प्रकार के दुःखों से बचाने में और उच्चतर बनाने में जादू का काम देगा। इस प्रकार के सम्यक् सिद्धान्त पर जो इमारत बनाई जाएगी, वह स्थाई होगी और दृढ़ होगी। ईंट और पत्थर से बनी हुई इमारतों की अपेक्षा वह कहीं अधिक उत्तम होगी, कारण कि वे समय पाकर नष्ट हो जाती हैं, परन्तु यह इमारत कभी नष्ट नहीं होगी। चाहे तुम दुःख और विपत्ति में ग्रसित हो, चाहे हर्ष और आनन्द के शिखर पर आरूढ़ हो, प्रत्येक अवस्था में इस सिद्धान्त पर अटल जमे रहो, इसी को अपना एक मात्र अवलम्ब समझो और इसी को नित्य, अविनाशी दृढ़ नींव पर अपना पैर जमा रहोगे तो तुम में ऐसा आध्यात्मिक बल आ जाएगा कि तुम पाप और बुराई की शक्तियों को काँच के खिलौनों की तरह चकनाचूर कर दोगे और तुम्हें ऐसी सफलता प्राप्त होगी कि वह उस मनुष्य के स्वप्न में भी नहीं आ सकती कि जो केवल सांसारिक धन सम्पदा की अभिलाषा रखता है। यदि तुम्हें सम्यक् सिद्धान्त है और किसी प्रकार की शंका या सन्देह नहीं है तो तुम्हें केवल वही नहीं मिलेगा कि जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है, किन्तु तुम्हारी शक्ति यहाँ तक बढ़ जाएगी कि यदि तुम किसी पहाड़ से भी कहोगे कि यहाँ से हट जा और टूटकर समुद्र में गिर जा, तो यह भी सम्भव है।

इस समय भी ऐसे स्त्री पुरुष मौजूद हैं कि जिन्होंने इस सम्यक् सिद्धान्त को भली भाँति समझ लिया है और जो रात दिन इसी में और इसी के द्वारा जीवन व्यतीत करते हैं तथा जिन्होंने इसकी बहुत कुछ परीक्षा कर ली है। उसी का यह परिणाम हुआ है कि उन्होंने शांति और विभव प्राप्त किया है। उनके केवल मुँह से शब्द निकालने की देर थी कि दुःख, शोक विपत्ति, निराशा और मानसिक वा शारीरिक वेदना के पहाड़ उनके आगे से हट गए हैं और विस्मृति के समुद्र में डूब गए हैं।

यदि तुम्हें इस प्रकार का दृढ़ सिद्धान्त है तो तुम्हें अपनी भावी सफलता या असफलता की चिन्ता करने की कोई जरूरत नहीं है सफलता तुमको अवश्य प्राप्त होगी। तुम्हें अच्छे या बुरे परिणाम की चिन्ता करने की भी जरूरत नहीं है। तुम शांति और आनन्द के साथ अपने काम को किये जाओ और यह जान लो कि सद्बिचारों और सद्कार्यों से अवश्य शुभ परिणाम निकलेंगे।

—(शेष अगले अंक में)

संतान-शिक्षक

लेखक: डॉ० गोकुलचन्द मारंग

संसार में अन्य प्रिय वस्तुओं के निकट संतान अधिक प्रिय वस्तु है। मनुष्य संतान के लिये बड़े-2 उद्योग करता है। पुत्र धनियों का पूर्ण सुख, वृद्धों का सहारा, कष्ट समय में माता-पिता का धैर्य और समाज का रत्न होता है।

आश्चर्य का स्थल है, कि सभ्यताभिमानि देश यूरोप और अमेरिका संतान उत्पत्ति के विषय में क्रमशः उदासीन होते जाते हैं। इंग्लैंड में प्रोफेसर मैथलस का मत कि "आबादी जितनी कम होगी मनुष्य उतनी ही अधिक श्री प्राप्त करेगा" लोगों में घर करता जा रहा है। फ्रांस में तो इस मत का इतना जोर हुआ, कि जिस पर गवर्नमेंट को भी ध्यान देना पड़ा। और इनाम व दंड की व्यवस्था करनी पड़ी। संतान से घृणा करने वाले कहते हैं, कि संतानों की अधिकता से देश दरिद्र हो जाता है। समाज दूषित, और सुन्दरता लोप हो जाती है। किन्तु इन लोगों की पोल अमेरिका वासी प्रसिद्ध डाक्टर कावन साहब ने इस प्रकार से खोली है, कि जो मनुष्य विषयी हैं, जो समझते हैं कि संतान के झगड़े में लगभग एक वर्ष बिना आनंद के बिताना होगा। वह स्त्रियों को यह उपदेश देकर कि संतान से तुम्हारी सुन्दरता नष्ट हो जायगी अपने में मिला लेते हैं। और इस कारण कई प्रकार से घृणित क्रियाओं द्वारा वह संतान नहीं होने देते एवं मैथलस का मत स्वीकार करते हैं।

संतान पैदा करना प्राकृतिक कर्म है। जिस प्रकार व्यायाम आदि से सुन्दरता घटती नहीं है, उसी प्रकार संतान उत्पन्न करने से भी सुन्दरता नहीं घटती। वरन् वह मूर्ख जो औषधियों द्वारा इस स्वाभाविक और सात्विक कर्म का विरोध करते हैं, अपना स्वास्थ्य और स्त्रियों की सुन्दरता अपहरण करते हैं। जो हो, यह बड़े आनन्द की बात है, कि हमारे देशवासियों में यह दुष्ट विचार अभी तक नहीं घुसा है। वह यह भी नहीं कहते कि भारतवर्ष जैसे दरिद्र देश को संतान की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है यही संतोष की बात है।

हमारे यहां धनियों को धन रक्षार्थ, सामान्य अवस्था वालों को कुल व नाम रक्षार्थ, और निर्धनियों को धन प्राप्त करने के लिये संतान की आवश्यकता समझी जाती है। हम यह नहीं कहते कि संतान की आवश्यकता इसी कारण से है? इस जगह हमारा कहना यही है, कि बिलात वालों की इस अजीब सभ्यता ने नकलची भारतवर्ष को अभी तक अपनाने की कृपा नहीं की। किन्तु संतान के सम्बन्ध में हमारा निजामत यह है, कि अपनी हैसियत से अधिक संतान कदापि न पैदा की जावे। इतनी संतान की आवश्यकता नहीं है कि जिसकी देखभाल माता-पिता भले प्रकार से न कर सकें। अथवा सरलता पूर्वक वह अपने कर्तव्य पालन न कर सकें। भारतवर्ष को संतानों की परम आवश्यकता है, किन्तु लंगड़े-लूले, अंधे अथवा कायर, कपूत और दुष्टों की बिल्कुल जरूरत नहीं। जिस प्रकार की संतानों की आवश्यकता है। उसी प्रकार की संतति होनी चाहिये। वरना यदि भारतवर्ष में भी मैथलस महाशय का मत माना जाय, तो बुराई नहीं है।

अंग्रेजी साहित्य के एक प्रसिद्ध कवि ने लिखा है, कि 'शिशु मनुष्यों की पिता है।' यदि इस वाक्य की व्याख्या की जाय तो एक पृथक् पुस्तक की रचना करनी पड़े। इसका अभिप्राय यही है, कि बालक समाज का स्तम्भ है-जाति का मुख और देश का अमूल्य रत्न है। अतीत समय में श्रीकृष्ण, अर्जुन और भीष्म पितामह पर, वर्तमान समय में रवीन्द्रबाबू, बोसबाबू, और गांधीजी पर दृष्टि करलो। यह भी संतान थे, और अब हम देख रहे हैं, कि ये मनुष्यों के पिता हैं। भारत को ऐसी ही संतानों की आवश्यकता है। लापरवाही के साथ स्वयं पैदा होने वाले पौधों की तरह संतान पैदा करने की जरूरत नहीं, यद्यपि इस प्रकार से विषैले और अमृतमय दोनों प्रकार के पोधे उपजते हैं, परन्तु विषैले ही अधिक उपजते हैं। इस कारण ध्यान से संतान की नवीन सृष्टि की जानी चाहिये। यहां हम यह भी कह देना चाहते हैं कि यह बात अकाट्य प्रमाणों द्वारा सिद्ध हो गयी है कि मनुष्य जिस प्रकार की चाहे, संतान उत्पन्न कर सकता है। ❀❀❀

बनाती थी, एक दिन स्वयं उसी जाल में उलझकर अपना जीवन दे बैठती है। यही हाल स्वार्थी व्यक्ति विवेकशून्य होकर अपनाकर बैठता है। किसी ग्रामीण कवि ने बड़ा सुन्दर लिखा है कि—

देखो मकड़ी के भाव को, सदा बनाती जाल।
भोले भाले जीव को, फांस लेय तत्काल॥
फांस लेय तत्काल, मारकर है खा जाती।
दयाहीन निर्लज्ज निकम्मी, न शरमाती॥
कवि कहें मुलायमसिंह जाल को काल बनावे।
फांसत-फांसत जीव जाल में खुद फंस जावे॥

महाकवि शंकर ने विवेक की महत्ता को बड़ी ही गहराई से समझकर जन कल्याण के लिये अपनी सशक्त लेखनी से उसे उकेरा भी है। वे लिखते हैं कि व्यक्ति बिना विवेक के अपने आपको घोर संकटों में झोंक देता है देखिये—

कुलबोर कठोर महा कपटी, कब कोमल, कर्म-कलाप करें।
पशु पोच प्रचण्ड प्रमार भरे, भर पेट भयानक पाप करें।
प्रण रोप लड़ें लघु आपस में, तज बैर न मेल मिलाप करें।
कवि शंकर मूढ़ विवेक बिना, अपना गल बन्धन आप करें॥

अर्थात् वे विवेकहीन स्वार्थी महाकपटी कठोर कुल की उत्तम मर्यादा को नष्ट कर कभी अच्छे कर्मों का विस्तार नहीं करते हैं। ऐसे पशु तुल्य भयंकर प्रमाद ग्रस्त लोग सीमातीत पापों को करने में भी संकोच नहीं करते हैं। ऐसे नीचता को प्राप्त लोग तुच्छ वैर के वशीभूत होकर निरन्तर आपस में लड़ाई झगड़ा करते रहते हैं। महाकवि शंकर कहते हैं महामूर्ख अविवेकी अपना गला अपने आप बिनाश के फन्दे में डाल देते हैं।

विवेकहीन साधु भेषधारी लोगों पर भी शंकर ने करारा व्यंग किया है—

घर बार विसार विरक्त बने, मुनि वेष बनाय प्रमत्त रहें।
वकबाद अबोध गृहस्थ सुने, शठ शिष्य अनन्य-सुजान कहें।
घुस घोर घमण्ड महावन में, विचरें कुलबोर कुपन्थ गहें।
कवि शंकर एक विवेक बिना, कपटी उपताप अनेक सहें॥

अर्थात् प्रमादी लोग अपना घर बार छोड़कर के विरक्त होने का ढोंग रचाते हैं। मुनियों का भेष बनाकर अहंकार में डूबे रहते हैं। अज्ञानी गृहस्थ लोग उनकी रटी रटाई बातें सुनते और उनको विद्वान मानकर अन्धश्रद्धा में मूर्खता को प्राप्त होते हैं। उनकी मर्यादा को डुबाने वाले लोग घमण्ड के भयानक जंगल में अपने विनाश को पकड़ लेते हैं। कवि शंकर कहते हैं बिना विवेक के कपटी लोग अनेक प्रकार के कष्टों को संसार में झेलते रहते हैं। बिना विवेक के मनुष्य को ईश्वर का साक्षात्कार भी नहीं हो सकता। देखिये महा कवि शंकर की एक रचना—

बिन वास बसै वसुधा भर में, द्रवता रस हीन बहै वन में।
चमके बिन रूप हुताशन में, विचरे बिन छूत प्रभंजन में।
गरजे बिन शब्द ख-मण्डल में, बिन भेद रहै जड़ चेतन में।
कवि शंकर ब्रह्म विलास करे, इस भाँति विवेक भरे मन में॥

महाकवि शंकर कहते हैं कि वह परमात्मा बिना जगह घेरे सब जगह रह रहा है, बिना रस के सबको रस दे रहा है। बिना रूप के अग्नि में उसी की चमक है बिना स्पर्श के वायु में वही विचरण कर रहा है। शब्द के बिना आकाश में उसी की गर्जन है। जड़ और चेतन में बिना भेद के वर्तमान हो रहा है। इसी प्रकार जिनके मन सत्य से पवित्र हैं उनमें विवेक का उदय हो जाये। परमात्मा का साक्षात्कार उन्हीं व्यक्तियों को होता है।

सारांश यह है कि यदि हम अपना परिवार, राष्ट्र, समाज या प्राणिमात्र का कल्याण करना चाहते हैं तो उसका एकमात्र उपाय अपने को विवेकी बनाओ। विवेकी बनाने के लिये महर्षि दयानन्द के द्वारा संस्थापित आर्यसमाज के नियमों का अक्षरशः पालन करते हुये अपना सारा चिन्तन परोपकारमय बना दो। जिससे मन में पवित्रता के होने से विवेक हो जायेगा, इसी विवेक के द्वारा सारी समस्याओं का समाधान होता है। ❀❀❀

वामी, प्रकाशक, सम्पादक आचार्य स्वदेश के लिए रमेश प्रिन्टिंग प्रेस, पंचवटी, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित